राष्ट्रीय संगोष्ठी

महामना मालवीय : समकालीन समाज, संस्कृति एवं पत्रकारिता

बीज-वक्तव्य

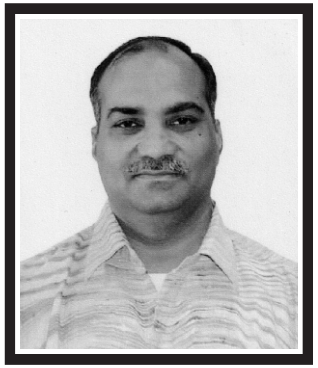

बालमुकुन्द पाण्डेय

राष्ट्रीय संगठन-सचिव
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

<u>संयुक्त आयोजन :</u>

भारतीय इतिहास संकलन समिति, काशी (उत्तरप्रदेश) एवं
पं० मदनमोहन मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान
(महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ), वाराणसी

विद्यापीठ-परिसर, वाराणसी
मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी, कलियुगाब्द 5116, वि०सं० 2071
(दिनांक 15 नवम्बर, 2014 ईसवी, शनिवार)

महामना मालवीय : समकालीन समाज, संस्कृति एवं पत्रकारिता

बालमुकुन्द पाण्डेय

सम्मानित प्रतिभागियो, इतिहासविदो, देवियो और सज्जनो!

आधुनिक भारत के इतिहास में उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी का काल नवोन्मेष का काल है। इस कालावधि में जहाँ भारतीय अस्मिता पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी थी, वहीं कुछ वैचारिक शक्तियाँ भारत को स्वाधीन और सम्प्रभुतासम्पन्न राष्ट्र बनाने के लिए भी प्रयासरत थीं। ऐसे ही प्रयासरत वैचारिक आयामों के अंतर्गत प्रथमतः एक वर्ग ऐसा था जो भारत की खोई हुई अस्मिता को पुनः प्राप्त व प्रगाढ़ करने के लिए ब्रितानी साम्राज्य के अधीन स्वराज्य की संकल्पना को मूर्तरूप में परिणत करना चाहता था। द्वितीयतः एक ऐसा वर्ग था जो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के आधार पर भारत को एक प्रभुतासम्पन्न सांस्कृतिक राष्ट्र के रूप में संगठित करते हुए भारत को स्वाधीन करना चाहता था। वस्तुतः यह वर्ग भारतीय राष्ट्र की एक परम्परागत अवधारणा पर बल देता था और उसी पारम्परिक संकल्पना को यथार्थ में परिवतर्तित करना चाहता था। भारत में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक जागरण के प्रयासों को भारत की स्वाधीनता के रूप में परिणत करना ही इस वर्ग का मुख्य उद्देश्य था। भारतीय जनमानस में इस प्रकार के जागतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक वैचारिक क्रान्ति

का अभ्युदय हुआ। 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक भारत में जो भी सामाजिक धार्मिक पुनरुद्धार के कार्य प्रारम्भ हुए, वे वस्तुतः इस वैचारिक उद्घोष का ही परिणाम थे। 20वीं शती के प्रारम्भ में अनेक मनीषियों—स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824-1883), स्वामी विवेकानन्द (1863-1902), महामना पं० मदनमोहन मालवीय (1861-1946), श्रीअरविन्द (1872-1950), डॉ० केशवराव बलिराम हेडगेवार (1889-1940) आदि ऐसे ही चिन्तक थे जिन्होंने भारत की सुप्त अस्मिता को अपने बौद्धिक-वैचारिक क्रियाकलापों से न सिर्फ जाग्रत् करने का प्रयास किया, अपितु बहुसंख्य हिंदू समाज का ध्यान उन कमज़ोरियों की ओर आकृष्ट करने का भी प्रयास किया जिनके फलस्वरूप भारत पराधीन हुआ था।

महामना पं० मदनमोहन मालवीय भी ऐसे ही मनीषी थे जिन्होंने अपने वैचारिक मंथन से हिंदू समाज के विविध क्षेत्रों को एक सुधारात्मक दृष्टि प्रदान की। मदनमोहन मालवीय अप्रतिम मेधासम्पन्न व्यक्तित्व के धनी थे और उन्होंने अपनी इस मेधा का परिचय अपने सार्वजनिक जीवन में किया। सार्वजनिक जीवन का शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र शेष रहा जो मालवीय जी के नीतिगत सिद्धान्तों के प्रयासों से अछूता रहा हो। यहाँ यह उल्लेख करना भी समीचीन होगा कि मालवीय जी का सम्पूर्ण जीवन यथार्थतः राष्ट्रार्पित था। राष्ट्रभाव-जैसे गूढ़ मननशील विषय के प्रति उनकी कथनी-करनी में कोई भेद नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने भारत के प्राच्य ज्ञान-विज्ञान, पुरा व्यवस्थाओं के प्रति हिंदू समाज की उपेक्षा अर्थात् सनातन भारतीय विचार के प्रति व्युत्पन्न शिथिलता को भारत की दुर्दशा के लिए उत्तरदायी माना। उन्होंने हिंदुत्व को ही राष्ट्रीयता का पर्याय मानते हुए हिंदुत्व-आधारित मान्यताओं के आधार पर ही शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र की संकल्पना को चरितार्थ करने का जीवनपर्यंत प्रयास किया। उन्होंने समाज के विविध क्षेत्र, चाहे वह स्वदेशी हो या हिंदी (राष्ट्रभाषा), गोरक्षा, अस्पृश्यता, शिक्षा, पत्रकारिता-जैसे अन्य सामाजिक-धार्मिक विषयों को राष्ट्रीय चेतना का मूल-केन्द्र मानते हुए इन विषयों को राष्ट्र-जागरण का साधन बनाया। वस्तुतः इन विविध विषयों के पीछे मालवीय जी का निहितार्थ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा को पुष्ट करना था जिससे भारत की खोई हुई अस्मिता को पुनः प्राप्त कर भारत को पुनः विश्व का सिरमौर बनाया जा सके। यहाँ स्मरण रहे कि मालवीय जी के सम्पूर्ण जीवन का विश्लेषणात्मक पक्ष यह है कि हिंदुत्व ही उनके राष्ट्रोत्थान का केन्द्र था। यहाँ यह भी उल्लेख करना समीचीन होगा कि महात्मा गाँधी (1869-1948) एवं समकालीन अन्य

नेताओं ने अपनी राजनीतिक पृष्ठभूमि का निर्माण जिन सिद्धान्तों पर किया, उसकी आधारित संरचना मालवीय जी के चिन्तन का ही सुफल थी।

पं० मदनमोहन मालवीय ने राष्ट्रोत्थान के विविध कार्यों से जीवनपर्यंत मातृभू की वास्तविक अर्चना की। ध्यातव्य है कि उन्होंने अपने चिन्तन से हिंदू समाज को दृष्टि प्रदान करते हुए विविध नव प्रकल्पों द्वारा राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत् रखने का महनीय कार्य किया, जिसका परिणाम भारत को स्वाधीन कराना था तथा अन्तिम लक्ष्य हिंदू-मान्यताओं पर आधारित हिंदू राष्ट्र का उत्थान करना था। मालवीय जी ने भारत की स्वाधीनता के लिए चल रहे समाज जागरण के प्रयासों को अपने चिन्तन से प्रभावित किया, लेकिन उन्होंने हिंदुत्व, शिक्षा, पत्रकारिता-जैसे वैचारिक पक्षों को अपने अन्तिम श्वास तक वैचारिक सम्बल प्रदान किया। प्रस्तुत पुस्तक में पत्रकारिता के क्षेत्र में मालवीय जी के योगदान का इतिहाससम्मत विश्लेषण ही अभीष्ट है।

भारत में पत्रकारिता का इतिहास अति प्राचीन है। यद्यपि उसके स्वरूप की तुलना वर्तमान पत्रकारिता से करना न्यायसंगत न होगा। आधुनिक भारत में पत्रकारिता का व्यावहारिक इतिहास 1857-'59 ई० के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पश्चात् प्रारम्भ होता है। सन् 1857 में भारत में लगभग 525 पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं। इनमें 174 अंग्रेज़ी भाषा में और 374 भारतीय भाषाओं में या अंग्रेज़ी के साथ किसी देशी भाषा में प्रकाशित होती थीं।[1] इनमें से कुछ पत्र-पत्रिकाएँ यूरोपियनों और पादरियों द्वारा ईसाइयत के प्रचार के लिए और कुछ यूरोपीय और एंग्लो-इण्डियन व्यापारियों द्वारा किसी प्रसिद्ध यूरोपीय के संपादकत्व में प्रकाशित होती थीं। ध्यातव्य है कि इन पत्र-पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य की भक्ति, भारत सरकार की नीति का समर्थन तथा भारत-निवासी यूरोपीयों और एंग्लो-इण्डियनों के गौरव और हितों की रक्षा और पुष्टि करना था।

इसके विपरीत उस समय कुछ ऐसे भी भारतीय स्तम्भकार थे जिनका उद्देश्य भारतीय हितों की रक्षा, देश की समस्याओं का भारतीय दृष्टिकोण से विश्लेषण, जनता के कष्टों के निवारण का आग्रह, जनाकांक्षाओं का समर्थन तथा लोकतांत्रिक विचारों का प्रसार आदि करना था। प्रजातीय अहंकार से नियुक्ति

1. मुकुट बिहारी लाल, *महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व*, प्रथम संस्करण, बनारस, 1977, पृ०17

व्यवहार, पक्षपातरहित न्याय, जनहितकारी नीतियों का अनुसरण, प्रतिनिधि-संस्थाओं का विकास तथा भारत के शासन में समता और क्षमता के आधार पर भारतीय प्रजा की साझेदारी— इस युग के भारतीय पत्रकारों की माँगें थीं।[1] यद्यपि अधिकांश भारतीय पत्रकार मध्यमवर्गीय विचारों और आकांक्षाओं का प्रतिपादन, प्रचार और पोषण करते थे, तथापि ये बातें सभी पत्रों के संबंध में लागू नहीं की जा सकतीं। कतिपय पत्रकारों का दृष्टिकोण मूलतः परम्परावादी था और कतिपय पत्रकार समाजसुधार पर ही बल देते थे। अधिकांश किसी-न-किसी अंश में सामाजिक और राजनीतिक— दोनों प्रकार के सुधारों के पक्ष में थे।[2]

जहाँ एक ओर ब्रिटिश शासन अथवा ईसाई-मिशनरियों द्वारा प्रायोजित पत्र भारत, विशेषकर हिंदू-धर्म की छवि धूमिल करने का षड्यन्त्र कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर भारतीय समाचार-पत्रों ने अंग्रेज़ी-पत्रों के भारतविरोधी प्रचार का समुचित उत्तर दिया और भारतीयों को विदेशी शासन की त्रुटियों से अवगत कराया। इस प्रकार के समाचार-पत्रों में *उदन्तमार्त्तण्ड* नामक हिंदी का प्रथम समाचार-पत्र दिनांक 30 मई, 1826 को पं० जुगल किशोर शुक्ल तथा मनु ठाकुर के संपादकत्व तथा संरक्षण में प्रकाशित हुआ।[3] इसके अतिरिक्त *संवाद कौमुदी* (1822), *रास्त गुफ्तार* (1815), *बॉम्बे समाचार* (1822), *बंगदूत* (1832), *अमृत बाजार पत्रिका* (1868), *ट्रिब्यून* (1877) आदि समाचार-पत्र भारतीय पक्ष को उजागर करने लगे थे।[4] जैसे-जैसे भारतीय पत्रकारिता का विकास होने लगा और वह भारतीय हितों के समर्थन को अपनी विषय-वस्तु के रूप में प्रकाशित करने लगी, वैसे-वैसे पत्रकारिता के सन्दर्भ में ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति भी उग्र होती गयी।[5] नियमों को और कठोर बना दिया। सन् 1878 में वायसराय लॉर्ड लिटन (1876-1880) ने 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' (Vernacular Press Act) पारित कर भारतीय समाचार-पत्रों का गला घोंट दिया।[6]

1. मुकुट बिहारी लाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 17
2. *वही*, पृ० 17
3. डॉ० कृष्ण बिहारी मिश्र, *हिंदी-पत्रकारिता*, प्रथम संस्करण, 1868, पृ० 8
4. देसाई ए०आर०, *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि*, द्वितीय संस्करण, पुनर्मुद्रण, 1982, पृ० 178-179
5. डॉ० कृष्ण बिहारी मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ० 22
6. आर०सी० मजूमदार एण्ड डी०के० घोष, *ब्रिटिश पेरामाउन्सी एण्ड इण्डियन रिनाशा*, पार्ट टू, प्रथम संस्करण, 1865, पृ० 247

वायसराय लॉर्ड कर्जन (1899-1905) ने भी 'ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट' (Official Secrets Act) पारित किया। इसके अनुसार समाचार-पत्र में ऑफ़िस की जानकारी को प्रकाशित करना वर्जित था। सन् 1908 में अपराधों को भड़कानेवाला अधिनियम समाचार-पत्रों के लिए पारित किया गया।[1] भारतीय पत्रकारिता को ब्रिटिश शासनकाल में वही यातना सहन करनी पड़ी जो आयरलैण्ड के निवासियों को ब्रिटिश शासनकाल में झेलनी पड़ी थी।[2] इस प्रकार की दमनकारी परिस्थितियों में भारत में प्रेस की स्वतन्त्रता को बनाए रखना अत्यन्त कठिन कार्य था। वस्तुतः भारत में प्रेस व समाचार-पत्र, पत्रिकाओं में बढ़ते प्रभाव से ब्रिटिश शासन सशंकित था। निश्चय ही इन दमनकारी परिस्थितियों और ब्रिटिश शासन के अत्याचारी शासन के विरुद्ध भारतीय समाचार-पत्र जनजागृति का एक बड़ा माध्यम थे। बीसवीं शती के प्रारम्भ में भारत में राष्ट्रीय चेतना, विशेषकर राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि के निर्माण में समाचार-पत्रों का अभूतपूर्व योगदान था। पं० मदनमोहन मालवीय वास्तविक अर्थ में राष्ट्रभक्त थे और वह सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रभक्ति का संचार करने अर्थात् राष्ट्र-जागरण के लिए कटिबद्ध थे। इसलिये वे राष्ट्रसेवा के अपने संकल्प की पूर्ति के लिए पत्रकारिता को सर्वोच्च साधन मानते थे। प्रस्तुत पुस्तक में मालवीय जी का पत्रकारिता-संबंधी चिन्तन और उसकी कार्यरूपेण परिणति से संबंधित विविध तथ्यों का विश्लेषण ही अभीष्ट है।

मालवीय जी और पत्रकारिता

पं० मदनमोहन मालवीय जी ने अपने शैक्षणिक जीवन के पश्चात् अध्ययन-अध्यापन को जीविकोपार्जन का साधन बनाया। उन्होंने एक आदर्श शिक्षक के उत्तरदायित्व का भली-भाँति निर्वहन किया। मालवीय जी विद्यालय में अध्यापन के साथ-साथ 'भारती भवन' मोहल्ले के बच्चों को शिक्षा देने का कार्य करते थे। मालवीय जी राष्ट्र सेवा करने में सदैव तत्पर रहते थे, इसलिए छोटे बच्चों को शिक्षा देने में जो कमाल इन्हें हासिल था, वह कम ही अध्यापकों को हुआ करता है।[3] मालवीय जी विद्यालय में कार्यरत थे, किन्तु देश की वर्तमान परिस्थितियाँ उन्हें समाज-जीवन में प्रत्यक्ष कार्य करने के लिए प्रेरित कर रही थीं। मालवीय जी ने

1. ए०आर० देसाई, पूर्वोद्धृत, पृ० 184-261
2. हेमेन्द्र प्रसाद घोष, *द न्यूज पेपर इन इण्डिया*, पृ०49
3. रामगोविन्द मिश्र, *पं० मदन मोहन मालवीय का जीवन चरित*, पृ० 24

लेखन के क्षेत्र में अपना सार्वजनिक जीवन बालकृष्ण भट्ट (1844-1914) द्वारा संपादित हिंदी-मासिक *'हिंदी प्रदीप'* में लेखन द्वारा आरम्भ किया। अध्यापन-वृत्ति के पूर्व एवं पश्चात् मालवीय जी हिंदी के पत्रों के लिए लेख लिखा करते थे जिसके माध्यम से वह देश की अपढ़ अथवा कम पढ़ी जनता को जागृत करना चाहते थे तथा राष्ट्रीय समस्याओं की जानकारी देने एवं उनमें राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील थे।[1] यहाँ यह उल्लेख करना भी समीचीन होगा कि मालवीय जी ने अपनी किशोरावस्था में ही स्वयं को लेखन-कार्य से जोड़ लिया था। चौदह वर्ष की आयु में उनके द्वारा रचित कविताओं को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885) ने अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया था। उस समय मालवीय जी 'मकरन्द' उपनाम से कविताएँ लिखा करते थे।[2] मालवीय जी जब म्योर सेन्ट्रल कॉलेज में अध्ययनरत थे, तभी से उनके लेखन का गुणात्मक विकास प्रारम्भ हुआ। उनके गुरु पं० आदित्यराम भट्टाचार्य ने उनमें संस्कृत, साहित्य व कला के प्रति अनुराग उत्पन्न किया। अपने गुरु के आदेश पर ही मालवीय जी ने 'लिटररी इंस्टीट्यूट' नामक संस्था की स्थापना की थी, जहाँ साहित्यिक एवं सामाजिक चर्चाएँ हुआ करती थीं।[3] मालवीय जी जब विद्यालय में कार्य करते थे, तभी उन्होंने सार्वजनिक हित के मामलों पर *हिंदी प्रदीप* में लिखना प्रारम्भ कर दिया था। 'पिष्टपेषण' शीर्षक उनका प्रथम लेख *हिंदी प्रदीप* में मार्च, 1880 ई० के अंक में प्रकाशित हुआ था।[4]

सन् 1885 में मालवीय जी के गुरु पं० आदित्यराम भट्टाचार्य ने *इण्डियन यूनियन* नामक अंग्रेज़ी-साप्ताहिक प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। मालवीय जी ने इसके संपादन का बहुत कुछ भार अपने ऊपर ले रखा था। उनके गुरु उनके भाषा ज्ञान से परिचित व प्रभावित थे। उन्हीं की प्रेरणा से *इण्डियन यूनियन* में मालवीय जी के कई लेख भी प्रकाशित हुए।[5] यद्यपि यह मालवीय जी की पत्रकारिता-संबंधी रुचि

1. सोरन सिंह, *मदनमोहन मालवीय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व*, प्रथम संस्करण, दिल्ली 1989, पृ० 26
2. धनंजय चोपड़ा, *पत्रकारिता के युगनिर्माता मदनमोहन मालवीय*, प्रथम संस्करण, 2010, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ० 23
3. *वही*, पृ० 23
4. *हिंदी प्रदीप* में प्रकाशित उनके लेखों के लिए देखें : *हिंदी प्रदीप*, मार्च 1880, पृ० 12-16, 18 अक्टूबर, 1884, पृ० 13-22, अक्टूबर से दिसम्बर 1887, पृ० 27-32
5. रामनरेश त्रिपाठी, *तीस दिन मालवीय के साथ*, पृ० 53 और देखें *पत्रकारिता के युगनिर्माता मदनमोहन मालवीय*, धनंजय चोपड़ा, पृ० 24

की शैशवावस्था का काल था। उनका पत्रकारिता में सक्रिय रूप से योगदान *हिंदुस्तान* समाचार-पत्र में बतौर संपादक के नाते प्रारम्भ हुआ।

हिंदुस्तान समाचार-पत्र में अपनी सहभागिता भी उन्होंने अपने मूल्यों व उच्चादर्शों के बल पर प्राप्त की थी। पत्रकारिता के क्षेत्र में उनकी सक्रिय सहभागिता भी एक रोचक दृष्टांत का परिणाम थी जिसे उन्होंने अपनी अमिट मेधा से प्राप्त किया था। मालवीय जी व उनके गुरु आदित्यराम भट्टाचार्य के संयुक्त प्रयासों से सन् 1880 में 'हिंदू समाज' नामक संस्था का गठन हुआ जो कालान्तर में केन्द्रीय हिंदू समाज के रूप में परिवर्तित हुई। इस संस्था के उद्घाटन के पश्चात् ही मालवीय जी ने सक्रिय पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण किया। यही वह उत्सव था, जिससे मदनमोहन मालवीय और पत्रकारिता एक दूसरे के पर्याय बने।[1]

केन्द्रीय हिंदू समाज के इस अधिवेशन में सम्पूर्ण भारतवर्ष के चिन्तकों-मनीषियों के साथ-साथ समाज-जीवन में विविध क्षेत्रों से जुड़े लोगों ने भाग लिया। इस उत्सव में कालाकांकर तालुक़ के राजा रामपाल सिंह (1881-1909) भी थे जिनकी शिक्षा-दीक्षा इंग्लैण्ड में हुई थी। वह बाह्यावरण से पाश्चात्य संस्कृति की प्रतिमूर्ति थे। इस उत्सव अधिवेशन के अध्यक्ष वरवाधिपति वैष्णववर श्री महावीर प्रसाद और सभापति पं० लक्ष्मीनारायण व्यास वैद्य थे। राजा रामपाल सिंह सभापति के कार्य में अनेक व्यंग्यपूर्ण हस्तक्षेप पर रहे थे जो मालवीय जी को खटक रही थी। राजा रामपाल सिंह के इस अनुचित, अशोभनीय क्रियाकलाप से सम्मेलन में अनेक लोग असंतुष्ट थे। लेकिन ऊँची पद-प्रतिष्ठा के कारण कोई उन्हें परामर्श देने का साहस न कर सका। मालवीय जी इस अधिवेशन की सम्पूर्ण व्यवस्था देख रहे थे। उनके लिए राजा रामपाल सिंह का यह कृत्य असह्य था। उन्होंने साहस और नैतिकता का परिचय देते हुए कई बार रामपाल सिंह के कान में ऐसा न करने का परामर्श दिया, किन्तु राजा साहब ज़वाब में मुस्कुरा देते थे।[2] इतना ही नहीं, मालवीय जी का यह परामर्श-कार्य राजा रामपाल सिंह को अशोभनीय लगा। उन्होंने अधिवेशन के उपरान्त मालवीय जी के इस कृत्य पर एक कठोर अलोचनात्मक टिप्पणी अपने पत्र *हिंदुस्तान* में प्रकाशित करवा दी। उन्होंने लिखा कि अधिवेशन

1. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 24
2. उमेश दत्त तिवारी, *भारतभूषण महामना पं० मदनमोहन मालवीय : जीवन एवं व्यक्तित्व*, प्रथम संस्करण, 1988, पृ० 58

पूर्ण सफल रहा मगर उसमें दो-एक लोग ढीठ थे। जो कि बड़े-बड़े राजा रईसों और वक्ताओं को व्याख्यान देते समय कान में बोलने की धृष्टता करते थे।[1] कौन जानता था कि मदनमोहन मालवीय और राजा रामपाल सिंह का यह कटु परिचय आलोचनात्मक दृष्टिकोण से भविष्य में एक युगद्रष्टा पत्रकार का आविर्भाव होगा। यद्यपि यह कटुता अल्पकालीन थी, तथापि सन् 1886 ई० के राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन में मालवीय जी ने अपने ऐतिहासिक भाषण से प्रखर बौद्धिक क्षमता का परिचय देकर अधिवेशन में सहभागी हुए श्रोताओं को अपनी विद्वत्ता स्वीकार करने पर बाध्य कर दिया। राजा रामपाल सिंह भी उन्हीं श्रोताओं में से एक थे। मालवीय जी के उस प्रभावी उद्‌बोधन ने राजा रामपाल सिंह की उनके प्रति पूर्वाग्रहों को ध्वस्त कर दिया। वैसे राजा रामपाल सिंह का बाह्य व्यक्तित्व ही पाश्चात्य था। भीतर से वह अत्यन्त विशाल हृदय और उदारमना व्यक्ति थे तथा तत्कालीन ज़मीन्दारों और ज़ागीरदारों से सर्वथा भिन्न अत्यन्त निष्ठावान् देशभक्त थे। वह उन्हीं दिनों इंग्लैण्ड से लौटे थे। इंग्लैण्ड में उन्होंने जिस स्वतंत्रता की भावना का अनुभव किया था, उससे अनुप्राणित होकर अपने देश में स्वतंत्रता और उदारता के महत्त्व का प्रचार करने के लिए उन्होंने एक हिंदी-साप्ताहिक प्रारम्भ करने का संकल्प किया था।[2] वह चाहते थे कि साप्ताहिक पत्र को दैनिक कर दिया जाये और इसके लिए उन्हें योग्य व प्रतिभावान् बौद्धिक क्षमता से पूर्ण व्यक्ति की आवश्यकता थी। राजा रामपाल सिंह, मालवीय जी के उद्‌बोधन से इतने प्रभावित हुए कि प्रयाग लौटने पर उन्होंने मालवीय जी को पुरस्कारस्वरूप 10 रुपये भेंट किये।[3] राजा साहब की इच्छा थी कि मालवीय जी *हिंदुस्तान* के संपादन का दायित्व निर्वहन करें। उन्होंने मालवीय जी से कहा कि अपनी साठ रुपये की नौकरी छोड़कर *हिंदुस्तान* का संपादन करो। देश की सेवा करो और वक़ालत पढ़ो। मैं आपको दो सौ रुपये मासिक दिया करूँगा।[4] मालवीय जी ने अत्यन्त संकोच के साथ इस शर्त पर *हिंदुस्तान* का संपादक बनाना स्वीकार किया कि जब आप (राजा साहब) खाते-पीते हों तो उस समय न आप मुझसे बोलें और न मुझे अपने पास बुलावें।[5] मालवीय जी की इस दुविधा का कारण यह था

1. उमेश दत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 58
2. सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 27
3. मुकुट बिहारी लाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 40
4. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय का जीवन चरित*, नवीन संस्करण, 2009, पृ० 41-42
5. *वही*, पृ० 42

कि वह आग्रही 'मनसा वाचा कर्मणा ब्राह्मण' थे। पूजा-पाठ नियम-धर्म के प्रति उनकी नियमितता थी। इसके विपरीत खाने-पीने, आचार-विचार से पाश्चात्य संस्कृति के प्रति राजा साहेब आग्रही थे। इसलिये स्वाभाविक था कि पं० मदनमोहन मालवीय का 'पञ्चपात्र' और राजा साहब का 'प्याला' एकसाथ भला कैसे रह सकते थे ![1] राजा साहेब मालवीय जी के धर्मनिष्ठ जीवन से बहुत प्रभावित हुए और वह किसी भी मूल्य पर मालवीय जी को बुलाने के लिए कृत्संकल्पित थे। इसलिए उन्होंने मालवीय जी की शर्त सहर्ष स्वीकार कर ली। मालवीयजी ने जुलाई, 1887 ई० में अध्यापक पद से त्याग-पत्र दे दिया और *हिंदुस्तान* के संपादक का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। एक साधारण अध्यापक, जो विद्यालय में सीमित संख्या में छात्रों को पढ़ाता था, अब वह बहुत बड़ी संख्या की कक्षा को पढ़ाने-सिखानेवाला संपादक बन गया।[2] इस प्रकार मालवीय जी ने सक्रिय पत्रकारिता के क्षेत्र में एक ऐसी यात्रा प्रारम्भ की जो जीवनपर्यंत उनके अन्तिम श्वास तक चलती रही। मालवीय जी के लिए यह एक ऐसी यात्रा थी जो उनके जीविकोपार्जन से अधिक राष्ट्रजागरण व राष्ट्रभक्ति के आदर्शों व उनकी प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन थी।

मालवीय जी के संपादक बनते ही *हिंदुस्तान* ने बहुत लोकप्रियता अर्जित की।[3] तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं पर उनके निर्भयतापूर्ण संपादकीय लेख और टिप्पणियाँ लोग बड़े चाव से पढ़ते थे।[4] *हिंदुस्तान* का रविवारीय अंक स्वयं राजा साहेब के संपादकत्व में प्रकाशित होता था। मालवीय जी सोमवार से शनिवार तक कालाकांकर में रहते थे और रविवार को प्रयाग में, क्योंकि कालाकांकर प्रयाग से तीस मील की दूरी पर था।[5] इस समाचार-पत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह जनता और सरकार— दोनों का प्रिय था। मालवीय जी ने उस पत्र का संपादन पूरी योग्यता एवं विशिष्टता के साथ किया। इस तथ्य को उत्तर-पूर्वी प्रान्तीय सरकार ने भी स्वीकार किया। सन् 1888-'89 के

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, पूर्वोद्धृत, पृ० 42
2. *वही*, पृ० 42
3. *रिर्पोट ऑन द एन, डब्ल्यू प्रॉविसन्स एण्ड अवध फॉर द इयर एण्डिंग*, 31-3, 1889, इलाहाबाद, 1890, पृ० 169
4. डॉ० जयराम मिश्र, 'महामना मालवीय भारतीय संस्कृति के प्रतीक', *सम्मेलन पत्रिका* 'श्रद्धांजलि विशेषांक', 1884, भाग 48, संख्या 2,3,4 और पृ० 85
5. *रिर्पोट ऑन द एन, डब्ल्यू प्रॉविसन्स एण्ड अवध फॉर द इयर एण्डिंग*, 31, 3, 1889, पृ० 169

प्रतिवेदन में उत्तर-पूर्वीय प्रान्तीय सरकार ने उल्लेख किया है कि '*हिंदुस्तान*, जिसकी प्रतिदिन 240 प्रतियाँ वितरित की जाती हैं, कदाचित् भाषा-समाचार पत्रों में सर्वाधिक योग्यता से संपादित एवं उच्च आकांक्षाओं की ओर उन्मुख है।' यह सर्वोत्तम संपादित पत्र के रूप में स्वीकृत किया गया।

पं० मदनमोहन मालवीय के संपादकीय की यह विशेषता थी कि उन्होंने अपने लेखों में जनता के हितों के विरुद्ध सरकारी नीतियों की आलोचना करने में कभी संकोच नहीं किया। उनकी आलोचना का यह अनुकरणीय गुण था कि उन्होंने कभी किसी व्यक्ति, वर्ग या संख्या के विरुद्ध किसी प्रकार के अपशब्द, व्यंग्य अथवा अशिष्ट भाषा का प्रयोग नहीं किया।[1] उन्होंने अपने 'संपादकीय' में शालीनता, औचित्य और महत्ता का उच्च अनुकरणीय स्तर बनाए रखा। वह जिस प्रकार आलोचनाएँ, टिप्पणियाँ एवं सुझाव देते थे, वे सदा व्यावहारिक और प्रयोजनीय होती थीं। उन्होंने सदा इस बात का ध्यान रखा कि उनका पक्ष किसी राजनीतिक दल अथवा समुदाय का पक्षधर न बन जाये। हिंदी में सर्वप्रथम 'ताड़ित समाचार' इसी पत्र से निकलते थे।[2] इसके अतिरिक्त मालवीय जी का विशेष आग्रह भाषा की शुद्धता पर था। वह बड़े सावधान प्रूफ-संशोधक थे। कभी-कभी वह प्रूफ में इतना संशोधन कर देते थे कि पूरी ख़बर या आलेख को फिर से कम्पोज़ करने पर बाध्य होना पड़ता था। वह लेखों को छपते-छपते तक संशोधन कर देते थे। वह मशीन पर चढ़े पत्र को भी शुद्ध किया करते थे। उनका नाम सुनकर अभ्यस्त प्रेसवाले भी काँप उठते थे।[3] उनका मानना था कि समाचार-पत्र ही आम जन में भाषा के प्रचारक व शिक्षक हैं। इसलिए क़ोशिश होनी चाहिए कि भाषा की त्रुटियाँ न जाने पायें। क्योंकि प्रूफ की अशुद्धि बड़े अपयश की बात है।[4] इसलिए प्रधान संपादक होते हुए भी वह प्रूफ को जब तक स्वयं देखकर सुधार नहीं लेते थे, तब तक उन्हें संतुष्टि नहीं मिलती थी।[5] प्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी (1907-1979) ने भी

1. वेंकटेश नारायण तिवारी, *महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय की जीवनी*, 1962, प्रथम खण्ड, पृ० 25
2. सीताराम चतुर्वेदी, पूर्वोक्त, पृ० 25
3. *वही*, पृ० 24
4. *वही*, पृ० 25
5. चोपड़ा, धनंजय, *पत्रकारिता के युग-निर्माता मदनमोहन मालवीय*, पूर्वोद्धृत, पृ० 27

मालवीय जी की संशोधनप्रियता की सादर सराहना की है।[1]

मालवीय जी का हिंदी एवं अंग्रेज़ी पर समान अधिकार था, इसलिए उनके संपादकीय लेख और टिप्पणियाँ साहित्य-सौन्दर्य के कारण भी लोकप्रिय थीं।[2] उन्होंने अपने पत्र में सदा सर्वग्राह्य भाषा-शैली को अपनाया। जन्म के स्थान पर 'जनम', आश्चर्य की जगह 'अचरज' आदि शब्द भाषा में देशीकरण तथा सामान्य पाठकों के प्रति सहानुभूति के द्योतक हैं।[3] हिंदी में उन्होंने ऐसी लोकभाषा एवं सहज-सरल शैली का प्रयोग किया कि हिंदी के साहित्यकार, इतिहासकार और विद्वान् उसे 'मालवीय जी की हिंदी' के नाम से स्मरण करते रहे हैं। मालवीय जी की शैली की यह विशेषता रही कि वह सरल-सुबोध थी और उसमें संस्कृत की बहुत पण्डिताऊ शब्दावली का पूर्ण अभाव रहता था।[4] *हिंदुस्तान* के उस दैनिक रूप को देखकर एक विशिष्ट समकालीन कवि ने लिखा था[5]—

'हिंदी भाषा में यद्यपि, प्रचलित पत्र अनेक ।
ये है 'हिंदुस्तान' ही, ता मैं दैनिक एक ।।'

इसके अलावा मालवीय जी ने *हिंदुस्तान* के माध्यम से राष्ट्र-जागरण का कार्य भी किया। स्वाधीनता-आन्दोलन के पक्ष में एक सकारात्मक वातावरण के निर्माण में *हिंदुस्तान* ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। *हिंदुस्तान* ने मालवीय जी के संपादकत्व में काँग्रेस का पूर्ण समर्थन किया। यह स्वाधीनता आन्दोलन में सहायता प्रदान करता रहा। साथ ही, राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की आवाज़ बुलन्द करता रहा।[6]

मालवीय जी ने भारत की दुर्दशा के लिए ब्रिटिश शासन को उत्तरदायी मानते हुए अपने संपादकीय लेखों से ब्रिटिश नीतियों का प्रबल विरोध किया। भारत की संस्कृति ग्रामप्रधान होने के कारण मालवीय जी स्वयं सप्ताह में एक निश्चित

1. डॉ० कृष्ण दत्त द्विवेदी, *भारतीय पुनर्जागरण और मदनमोहन मालवीय*, प्रथम संस्करण, 1891, पृ० 46
2. सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 29
3. उमेश दत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 56
4. सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 29-30
5. वेंकटेश नारायण तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 24
6. *नागरी प्रचारिणी पत्रिका*, 'मालवीय जन्मशताब्दी विशेषांक', वर्ष 65, अंक 2-4, संवत् 2018, पृ० 566-76

दिन किसी ग्रामीण समस्या पर आलेख लिखा करते थे। गाँवों की समस्याओं को प्रमुखता से प्रकाशित करने और विकास के समाचार को पत्र में स्थान देने का चलन इसी पत्र से मालवीय जी की संपादकीय नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ।[1] *हिंदुस्तान* में 'हमारे गाँव' शीर्षक से छपी उनकी स्वयं की रचना से उन्होंने भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों की दुर्दशा को चिह्नित करते हुए ब्रिटिश शासन की नीतियों व स्वार्थ में अंधे देशी रईसों को दीन व्यक्तियों को दुःखद स्थिति में पहुँचाने के लिये उत्तरदायी ठहराया।[2] मालवीय जी हमेशा इस प्रयास में रहते थे कि देशभक्तिपूर्ण कविताएँ ही *हिंदुस्तान* में प्रकाशित हों।[3]

यहाँ यह उल्लेख करना भी समीचीन होगा कि यद्यपि पत्रकारिता का क्षेत्र मालवीय जी के लिए बिल्कुल नवीन था, तथापि उन्होंने *हिंदुस्तान* के द्वारा अपने पत्रकारिता के प्रारम्भिक चरण में स्वयं के बौद्धिक कौशल से पत्रकारिता को नूतन तकनीकी साहित्यिक रूप प्रदान किया। मालवीय जी का मानना था कि किसी पत्र की सफलता मुख्यतः उसके संपादक की योग्यता, विश्लेषण-क्षमता, विषय-वस्तु को प्रतिपादित करने की कलात्मक शैली, निष्पक्षता एवं परिश्रम पर निर्भर करती है। *हिंदुस्तान* की 'संपादकीय' का उत्तरदायित्व लेते ही उन्होंने संपादकीय विभाग में पं० प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894), अमृतलाल चक्रवर्ती, बाबू गोपालराम गहमरी (1866-1946), शशिभूषण चटर्जी, गुलाबचन्द्र चौबे, पं० शीतला प्रसाद उपाध्याय, रामलाल मिश्र और स्वयं राजा रामपाल सिंह-जैसे योग्य प्रतिभावान् व्यक्तियों की टोली बनायी। इन व्यक्तियों को उस समय भारत-रत्न के रूप में माना जाता था। आज तक किसी और हिंदी समाचार-पत्र में ऐसा सुन्दर संपादक-मण्डल देखने में नहीं आया।[4] निश्चय ही उस कालावधि में *हिंदुस्तान* सफलता के जिस चरमोत्कर्ष पर पहुँचा, वह मालवीय जी के प्रयासों का ही सुफल था। मालवीय जी ने लगभग ढाई वर्षों तक *हिंदुस्तान* का संपादन किया और उसे सफलता के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। मालवीय जी इसी पत्र को पाकर पत्रकार बने थे और इस पत्र ने मालवीय जी को पाकर पत्रकारिता जगत् में अपना प्रभाव जमाया था। मालवीय जी की अभूतपूर्व मेधा, ज्ञान, कौशल से ही यह पत्र शीघ्र ही लोकप्रसिद्धि को प्राप्त हो गया। यहाँ यह

1. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 26
2. उमेश दत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 56
3. वेंकटेश नारायण तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 25-26
4. *वही*, पृ० 24

उल्लेख करना समीचीन होगा कि मालवीय जी ने अपने जिन नीतिगत आदर्शों के बल पर पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेशकर अल्प समय में ही अपनी योग्यता, आदर्शों से पत्रकारिता के जिस सर्वोच्च शिखर को स्पर्श किया, वह निश्चय ही उनके जीवट व्यक्तित्व का परिचायक है। वह जिन आदर्शों को लेकर *हिंदुस्तान* में संपादक हुए थे, उन्हीं आदर्शों के कारण उन्होंने *हिंदुस्तान* के संपादकीय दायित्व से स्वयं को मुक्त कर लिया। राजा रामपाल सिंह ने उस शर्त का उल्लंघन कर दिया जो मालवीयजी ने *हिंदुस्तान* में संपादक का दायित्व संभालने के पूर्व रखी थी। दुर्भाग्यवश एक दिन राजा रामपाल सिंह नशे की स्थिति में मालवीयजी को आवश्यक वार्ता के लिए बुलवाया। राजा रामपाल सिंह ने बातचीत के क्रम में मालवीय जी के गुरु पं० अयोध्यानाथ के संबंध में अनर्गल बातें कीं। मालवीय जी एकदम खिन्न हो गये।[1] उन्होंने राजा साहब को तुरंत अपनी शर्त का स्मरण दिलाया और स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि आपने स्वयं यह शर्त तोड़ी है। अतः आज से मैं आपकी सेवा करने में असमर्थ हूँ। उन्होंने उसी समय *हिंदुस्तान* को छोड़कर कालाकांकर से चले जाने का निश्चय किया। मालवीय जी संपादक पद से इस्तीफा देकर प्रयाग चले आये। उन्होंने कालाकांकर छोड़ते समय राजा साहब को जो पत्र भिजवाया, वह उनके जीवन व आदर्श व्यक्तित्व का परिचायक है। पत्र के उद्धरण निम्नलिखित हैं[2] —

> प्रिय राजा साहब,
>
> आज से मेरा अन्न-जल आपके पास से उठ गया। मैंने आपसे जो शर्त रखी थी, वह आज टूट गयी। मैं आज रात को या कल सुबह कालाकांकर से चला जाऊँगा। आप अपने पत्र का इंतज़ाम कर लीजिए। मैं आपकी उदारता और स्नेह को कभी नहीं भूलूँगा।
>
> भवदीय
>
> (मदनमोहन मालवीय)

यद्यपि राजा साहब ने मालवीय जी को अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिये प्रेरित किया, तथापि मालवीय जी सनातन संस्कृति से उपजे आदर्शों के

1. मुकुट बिहारी लाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 41
2. उमेश दत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ०59

अनुगामी थे। वह स्वभावतः आदर्श सिद्धान्तवाद की प्रतिमूर्ति थे। इसलिए किसी भी प्रकार का प्रलोभन व प्रबोधन उनके अटल निर्णय को नहीं बदल सका। त्याग के हवनकुण्ड में पं० मदनमोहन मालवीय की यह सबसे पहली महत्त्वपूर्ण आहूति थी।[1] राजा साहब ने मालवीयजी को कालाकांकर में रखने की सब आशा छोड़ दी तो उन्होंने एक शर्त पर उन्हें छोड़ना स्वीकार किया कि "आप वक़ालत पढ़िए और मैं आपका सारा व्यय निर्वहन करूँगा।"[2]

राजा साहब की यह उदारता और महानता थी कि वह मालवीय जी के अंतर्मन से प्रेरित थे। 250 रुपये प्रतिमाह की निरन्तर आर्थिक सहायता देते रहे।[3] मालवीय जी राजा साहब की इस उदारता को भी न्यायोचित नहीं मानते थे। वक़ालत पूर्ण करने के पश्चात् मालवीय जी ने जब एक बार राजा साहब से कहा कि वह अब उनका कोई काम नहीं करते, उनकी नौकरी भी नहीं है, तब रुपया क्यों भेजा जाता है? यह सुनकर राजा साहब बिगड़ गये और कहने लगे— "नौकरी में ? मालवीय जी, क्या आपने मेरे व्यवहार में कोई ऐसी बात पाई है, जिससे आपके साथ नौकर का बर्ताव पाया जाता हो ? आपके पास विद्या है। आप गुणों की खान हैं। आप उसके द्वारा मेरी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं और मैं थोड़े पैसों से आपकी सहायता करता हूँ। इससे आप पर मेरा एहसान क्या है ?[4]

मदनमोहन मालवीय : पत्रकारिता के आदर्श

पं० मदनमोहन मालवीय ने *हिंदुस्तान* से पत्रकारिता-जीवन का प्रारम्भ किया था। उन्होंने अपनी विद्या, ज्ञान, कौशल से पत्रकारिता के चिन्तन-क्षितिज को एक नवीन आयाम प्रदान किया। वस्तुतः मालवीय जी के समग्र चिन्तन को यदि एक शब्द में विश्लेषित करना हो तो निःसन्देह कहा जा सकता है 'राष्ट्र सर्वोपरि', अर्थात् राष्ट्रभक्ति उनके जीवन का ध्येय-वाक्य था। उनका यह ध्येय-वाक्य हिंदुत्व के इस अधिष्ठान में हिंदुत्व व राष्ट्र परस्पर पर्याय प्रतीत होते हैं। मालवीय जी के इस

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय*, प्रथम खण्ड, संवत् 1993, काशी, पृ० 42
2. सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 31
3. वेंकटेश नारायण तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 26, और देखिए, रामनरेश त्रिपाठी, पूर्वोद्धृत, पृ० 229
4. रामनरेश त्रिपाठी, पूर्वोद्धृत, पृ० 229, तुलनीय मुकुट बिहारी लाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 41

वैचारिक अधिष्ठान को पृथक् करना उनके राष्ट्र अर्थात् हिंदुत्व-रूपी चिन्तन को खण्डित करने के समान होगा। यह भी कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि मालवीय जी के शरीररूपी केन्द्र में राष्ट्र की आत्मा का वास था और इस आत्मशक्ति का केन्द्र हिंदुत्व ही था। इसलिये उनके चिन्तन के समग्र पक्षों पर इस आत्मशक्ति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पं० मदनमोहन मालवीय अपनी पत्रकारिता के माध्यम से अपने लेखन-कौशल के द्वारा जड़, स्थिर, निराश एवं पराधीन भारत को अपनी आत्मशक्ति से समृद्ध कर अभ्युदय एवं नवीनता की ओर अग्रसर करना चाहते थे। इस तथ्य को उनके द्वारा जीवनपर्यंत लिखे गए लेखों से स्पष्ट किया जा सकता है। मालवीय जी लेखनविद्या से भारतीयों में पुरुषार्थ, निर्भयता, स्वाभिमान का जागरण करना चाहते थे। साथ ही हमारी पुरा-प्राच्य संस्कृति की शाश्वत वाणी से भारतीय जनमानस को अवगत कराना चाहते थे। उन्होंने अपनी संस्कृतिमूलक लेखनी से भारतीय समाज को जहाँ एक ओर चैतन्यता प्रदान की वहीं दूसरी ओर सिंह के समान स्वाभिमानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का आदर्श मार्ग भी प्रशस्त किया। उनके लिए पत्रकारिता व्यवसाय न होकर एक धर्म था जिसका वह राष्ट्र-जागरण तथा राष्ट्रीय नवनिर्माण के निमित्त अप्रतिम निष्ठा के साथ पालन करते रहे। उनके पत्रों का मुख्य विषय देशभक्ति, देशसेवा, राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता, लोकतंत्र, स्वदेशी आदि पर चिन्तनपरक लेख, सनातन धर्म के सिद्धान्तों की युगानुरूप जनहितकारी व्याख्या, समाजसुधार, साम्प्रदायिक सद्भावना, विचार-स्वातन्त्र्य, समाचार-पत्रों की स्वाधीनता, कृषि, खेलकूद, विज्ञान आदि होता था।[1] पं० मदनमोहन मालवीय ने पत्रकारिता को राष्ट्र-जागरण का साधन बनाया। उनका स्वयं का पत्र *अभ्युदय* राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत था। इसमें प्रकाशित होनेवाले राष्ट्रीयता-संबंधी विचारों का विश्लेषण डॉ० राजेन्द्र प्रसाद (1884-1963) ने अपने शब्दों में करते हुए लिखा है : '*अभ्युदय* के लेखों में मालवीय जी की प्रतिभा प्रकाशित है, उसमें उनके जीवन का अनुभव समाया हुआ है। देश की स्थिति के अनुसार उस समय उन्होंने राष्ट्रीयता का जो संदेश दिया, उससे आज भी हम लाभ ले सकते हैं। एक सच्चे ब्राह्मण के रूप में उन्होंने जो उपदेश दिया, उनमें भारतीय आत्मा और संस्कृति बसती है।'[2]

मालवीय जी ने पत्रकारिता के क्षेत्र को भी अपने दार्शनिक व वैचारिक चिन्तन से परिष्कृत व प्रभावित किया। वस्तुतः मालवीय जी ने जिस समय

---

1. उमेश दत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 55
2. पद्मकांत मालवीय (सं०), *मालवीय जी के लेख*, भूमिका, 1962

पत्रकारिता को अपने संघर्ष का माध्यम बनाया, वह समय की मांग के अनुरूप था। यह वह समय था जब भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा था। इसके अतिरिक्त हिंदू समाज अनेक वैचारिक झंझावातों से होकर गुजर रहा था। यद्यपि इस समयावधि में भारत में पत्रकारिता का विकास भी प्रगोत्तर था। पं० मदनमोहन मालवीय सिर्फ़ जीवन एवं परिस्थितियों में ही नवीनता के आकांक्षी नहीं थे, अपितु उन्होंने एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न अनुभवी पत्रकार के रूप में पत्रकारिता क्षेत्र में भी अपनी विद्वत्ता से एक नयी शैली का अन्वेषण किया। उन्होंने पत्रकारिता को जनसामान्य की आवाज़ बनाते हुए जनमानस को वैचारिक, सामाजिक, राजनीतिक संघर्ष के लिए तैयार किया। उन्होंने पत्रकारिता को देश की स्वाधीनता प्राप्त करने का माध्यम बनाया। उन्होंने अपने 'संपादकीय' के माध्यम से ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों पर अपनी सधी व तीखी लेखन शैली से प्रहार किया। साथ ही देश की जनता को विदेशी शासन के दुष्प्रभावों से परिचित कराया। मालवीय जी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में नवीन तकनीकी व प्रयोगों का प्रारम्भ कर पत्रकारिता को एक नवीन दिशा देने का प्रयास किया।

मालवीय जी ने पत्रकारिता में उच्च वैचारिक आदर्शों की स्थापना की। उन्होंने जिन पत्र-पत्रिकाओं का संस्थापन, सञ्चालन और संपादन किया, उनमें विशिष्ट पक्षों का विश्लेषण करने से मालवीय जी का पत्रकारिता-संबंधी वैचारिक चिन्तन स्वतः ही स्पष्ट होने लगता है। उनकी पत्रकारिता तथा संपादन-कला के प्रगोत्तर विकास का अध्ययन करने के लिए आवश्यक है कि उन्होंने जिस क्रम में पत्रों का संस्थापन, संपादन और प्रकाशन किया, उसी से उसको विश्लेषित किया जाय। इससे हमें निम्नलिखित तथ्यों का पता चलेगा :

1. पत्र किस परिस्थिति और उद्देश्य से प्रकाशित हुआ ?[1]
2. संपादकीय नीति का निर्वाह किस सीमा तक और कब तक होता रहा ?
3. पत्र में तत्कालीन समाज और उसकी आवश्यकताओं का चित्रण कहाँ तक हुआ?
4. पत्र के माध्यम से किस कोटि का और किस रुचि का साहित्य सामने आया ?
5. तत्कालीन पत्रकारों, साहित्यकारों तथा विद्वानों का कितना सहयोग पत्र को मिला ?
6. पत्र का देश और समाज पर तात्कालिक और स्थायी प्रभाव किस प्रकार का

---

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में भारतीय जीवन*, द्वितीय खण्ड, पृ० 23

रहा?

महामना मालवीय जी द्वारा संस्थापित अथवा संपादित प्रमुख छः पत्रों की पूरी फाइल के गहन अध्ययन और मनन से उपर्युक्त तथ्यों का विवेचन और विश्लेषण किया जा सकता है। इससे न केवल भारतीय पत्रकारिता और उसका इतिहास शृंखलाबद्ध और व्यवस्थित होगा, अपितु उन परिस्थितियों का पता लगेगा जिनमें हमारे संपादकों और पत्रकारों ने अनन्य निष्ठा, त्याग और आत्मबलिदान से देश एवं समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन किया। उस समय पत्रकारिता केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं थी,[1] अपितु देश-सेवा का अत्यन्त श्रेष्ठ एवं श्रेयस्कर साधन थी। मालवीय जी ने अपने पत्रकारिता जीवन में इन तथ्यों व इनमें अंतनिर्हित उद्देश्यों को प्राप्त करने की पूर्ण चेष्टा की। उन्होंने पत्रकारिता को वास्तविक अर्थ में राष्ट्र-जीवन के साथ संबंधित करने का प्रयास किया।

सामान्यतः यह धारणा रही है कि संपादन-कला और भाषण-कला— दोनों एक ही व्यक्ति में नहीं होती।[2] किन्तु पत्रकारिता के आचार्य एवं नियामक महामना मालवीय जी इसके अपवाद थे।[3] उनकी लेखनी प्रभावशाली थी। *हिंदुस्तान, अभ्युदय* और *सनातन धर्म* में प्रकाशित उनके लेख सामयिक होते हुए भी साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं। उन लेखों के अध्ययन से ज्ञात होगा कि उनमें भारतीय संस्कृति, धर्म और सभ्यता-संबंधी अगाध ज्ञान-राशि निहित है।[4] हिंदी-पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने एक पथ-प्रदर्शक की भाँति आदर्श मार्ग की स्थापना की[5] तथा संपादन-कला की ऐसी ज्योति जगाई जिसके शुभ्र प्रकाश में कई दशकों तक हिंदी-पत्रकारिता

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन*, द्वितीय खण्ड, पृ० 23; महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय, *जी०डी० शास्त्री बर्थ सेंचुरी कोमोमोरेशन*, 1961, पृ० 201
2. लक्ष्मीशंकर व्यास, 'महामना मालवीय और पत्रकारिता', *नागरी प्रचारिणी पत्रिका*, 'मालवीय जन्मशती विशेषांक', विक्रम संवत् 2018, वर्ष 65, अंक 2-4, पृ० 572
3. *वही*, पृ० 572
4. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन*, द्वितीय खण्ड, लक्ष्मीशंकर व्यास का 'महामना मालवीय जी और पत्रकारिता' शीर्षक लेख, पृ० 20
5. ब्रजभूषण पाण्डेय, 'राष्ट्रभाषा के भविष्यद्रष्टा महामना मालवीय', *सम्मेलन पत्रिका*, 'श्रद्धाञ्जलि-विशेषांक', चैत्र-मार्गशीर्ष, शक, 1884 भाग 48, संख्या 2-4, पृ० 149

अपने प्रशस्त पथ पर बहती रही।[1] मालवीय जी ने अपना पत्रकारिता जीवन दैनिक *हिंदुस्तान* से प्रारम्भ किया था। उन्होंने इस समाचार-पत्र को राष्ट्रभाषा हिंदी के उन्नायक के रूप में प्रस्थापित करने का अतुलनीय कार्य किया। हिंदी-भाषा तथा देवनागरी-लिपि का सबल समर्थन इस पत्र के द्वारा अंत तक होता रहा। राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रसार को अग्रसर करने तथा राष्ट्रीय विचारधारा का प्रचार करने में इस पत्र का योगदान स्मरणीय रहेगा।[2] यहाँ यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि मालवीय जी ने न केवल हिंदी-पत्रकारिता पर अपना अमिट प्रभाव अंकित किया अपितु राष्ट्रभाषा के उन्नयन तथा संवर्धन व आदर्श के लिए भारतीय पत्रकारिता आपकी चिर ऋणी रहेगी। मालवीय जी ने हिंदी की प्रगति के साथ-साथ अंग्रेज़ी-भाषा के भी अनेक पत्रों का संपादन और सञ्चालन किया। भाषागत विद्वत्ता मालवीय जी की अद्वितीय क्षमता का परिचायक है, साथ ही इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मालवीय जी भाषागत ज्ञान की युग व समसामयिक आवश्यकताओं से भली-भाँति अवगत थे। उन्होंने युग की आवश्यकताओं को अत्यन्त दूरदर्शितापूर्वक देखा और समझा था।[3]

पत्रकारिता के प्रारम्भिक जीवन में मालवीय जी का चिन्तन व उद्देश्य भारत की समस्याओं को ब्रिटिश शासन तक पहुँचाना और ब्रिटिश शासन की नीतियाँ से जनसामान्य को अवगत करना था। मालवीय जी अपने 'संपादकीय' में ऐसा कोई विषय रखना नहीं चाहते थे जिससे प्रेस की स्वतंत्रता बाधित हो। मालवीय जी सरल, सुबोध, भाषा में लेख लिखने के पक्षपाती थे। साथ ही, ऐसे लेखों को प्रोत्साहन देते थे, जिनसे सरकारी नीतियों व क़ानून का उल्लंघन नहीं होता था। राजकीय नीति की आलोचना के अवसर पर वह कठोर कर्णबेधी शब्दों के प्रयोग को कभी भी पसन्द नहीं करते थे।[4] वस्तुतः पत्रकारिता के प्रारम्भिक दिनों में उन्होंने 'जनता की चिट्ठी सरकार के नाम', 'सरकार की चिट्ठी जनता के नाम'-जैसी वैचारिक संकल्पना को पत्रकारिता के माध्यम से साकार करने का प्रयत्न किया। वस्तुतः मालवीय जी की पत्रकारिता के प्रारम्भिक दिनों में सरकार व जनता से

1. कृष्ण दत्त द्विवेदी, 'महामना का बहुमुखी व्यक्तित्व', *काशी विश्वविद्यालय पत्रिका*, 'प्रज्ञा हीरक जयन्ती विशेषांक', सन् 1976-77, भाग 1-2, अंक 21-23, पृ० 82
2. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन*, द्वितीय खण्ड, पृ० 22
3. *वही*, पृ० 20
4. *अभ्युदय* के पूर्व संपादक पद्मकान्त मालवीय से साक्षात्कार पं० मदनमोहन, एस०एल० मुक्ता, पृ० 6

परस्पर जीवन्त संबंधों का आधारभूत माध्यम समाचार-पत्र ही थे। इस समयावधि में मालवीय जी का उद्देश्य पूर्णरूपेण एक आत्मविस्मृत समाज को जागृतकर उसे शक्तिसम्पन्न बनाना था; क्योंकि मालवीय जी का मानना था कि सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सुधारों व समाज की विस्मृत हुई चेतना के अभाव में भारत को स्वाधीन नहीं कराया जा सकता। समाज-सुधार का प्रबल आन्दोलन भी इस पत्र के माध्यम से किया गया था।[1] यद्यपि यह पत्र ब्रिटिश शासन की नीतियों की भी आलोचना करता था। उस समय ऐसी निर्भीक नीति किसी अन्य दैनिक पत्र की नहीं थी।[2]

मालवीय जी का दृष्टिकोण था कि पत्रकारिता में पत्रकार का चरित्र आदर्श मान-मर्यादापूर्ण होना चाहिये। उसमें देशभक्ति कूट-कूटकर भरी हो और वह सत्यपालन में जनता का मार्गदर्शन करे।[3] निःसन्देह पत्रकार समाज की धुरी होता है और समाचार-पत्रों में प्रकाशित उसके विचारों तथा समाचारों का प्रत्यक्ष प्रभाव जनमानस पर पड़ता है। मालवीय जी का मत था कि पत्र का उद्देश्य केवल समाचार का प्रसार मात्र ही नहीं, अपितु उसे सम्पूर्ण सौष्ठव के साथ सरल, सर्वबोध्य भाषा में प्रस्तुत करना भी है। मालवीय जी की मान्यता थी कि पत्र का यह धर्म होना चाहिए कि वह बिना भय और पक्षपात के पाठकों को समुचित रूप से उपदेश दे, प्रशिक्षित करे और उनका पथ-प्रदर्शन करे।[4] मालवीय जी जिस पत्र का संपादन करते, उसकी नीति से न तो स्वयं विपथ होते और न दूसरों को विपथ होने देते।[5] इसलिए मालवीय जी ने अपनी लेखन-वक्तव्य व प्रकाशन-शैली को अत्यन्त निर्भीक और निष्पक्ष बनाए रखा। देश के सार्वजनिक जीवन में जहाँ कहीं भी असामाजिक अथवा अकल्याणकारी तत्त्व दृष्टिगत होते, आपकी लेखनी उनके बहिष्कार के लिए पूर्ण क्षमता से प्रहार करती। मालवीय जी ने अपने पत्रकारिता चिन्तन में राष्ट्रीय हितों को

1. सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 38
2. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन,* खण्ड द्वितीय में लक्ष्मीशंकर व्यास का 'महामना मालवीय जी और पत्रकारिता' शीर्षक लेख, पृ० 22
3. *वही,* प्रथम खण्ड, पृ० 37, और देखें ईश्वरप्रसाद वर्मा, *मालवीयजी के सपनों का भारत,* प्रथम संस्करण, 1967, पृ०38
4. डॉ० किरण मिश्र, *भारत के कुलगुरु महामना मालवीय,* 'प्रज्ञा हीरक जयन्ती विशेषांक', 1976-'77, भाग 1-2, अंक 22-23, *काशी हिंदू विश्वविद्यालय पत्रिका,* पृ० 82
5. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *आधुनिक भारत के निर्माता मदनमोहन मालवीय,* द्वितीय संस्करण, 1980, पृ० 22

सदैव सर्वोच्चता प्रदान की। देश की स्वाधीनता का विषय आपकी पत्रकारिता के चिन्तन का लक्ष्य था।[1] राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ राष्ट्रीय हितों व राष्ट्र-अस्मिता से संबंधित विषय– स्वदेशी का प्रचार-प्रसार, गोरक्षा, राष्ट्रभाषा, सामाजिक एवं धार्मिक जागृति पर मालवीय जी विशेष बल दिया करते थे। उनकी पत्रकारिता का आदर्श सहिष्णुता, सद्भावना, समाचार-पत्रों की स्वाधीनता तथा सामाजिक सुधार था।[2] उनके द्वारा *अभ्युदय* का प्रकाशन तो स्वराज्य प्राप्ति हेतु ही किया गया था। *अभ्युदय* ने प्रारम्भ से ही स्वाधीनता संग्राम की अगुवाई को ही लक्ष्य बना रखा था। इसमें तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं व आन्दोलनों से जुड़े समाचारों को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता था। *अभ्युदय* पर मालवीय जी के विचारों व संस्कारों का पूरा प्रभाव परिलक्षित होता था।[3]

पं० मदनमोहन मालवीय ने पत्रकारिता को धर्म माना। वह समाचार-पत्र की विषय-सामग्री का सूक्ष्मता से अवलोकन करते थे। पत्र-प्रकाशन में निर्धारित मापदण्डों के अतिरिक्त कुछ भी प्रकाशित करना उनके लिये असह्य था। वह ऐसी किसी भी विषय-सामग्री, जिससे भारतीय संस्कृति की अस्मिता के धूमिल होने की सम्भावना होती थी, का प्रखर विरोध करते थे। एक बार *अभ्युदय* के संपादक पं० कृष्णकांत मालवीय ने *अभ्युदय* में विधवाओं की समस्या पर एक आलेख लिखा था जो मदनमोहन मालवीय को पसन्द नहीं आया, क्योंकि उन्हें उसमें कई बातें अपने सिद्धान्तों के विपरीत दिखाई पड़ीं। उन्होंने इस सन्दर्भ में संपादक कृष्णकांत को एक पत्र लिखा। यह पत्र आज भी प्रयाग नगरपालिका के संग्रहालय में सुरक्षित है।[4] पं० मदनमोहन मालवीय भारतीय धर्म, संस्कृति, परम्परा के सजग प्रहरी थे। उन्होंने पत्रकारिता के सन्दर्भ में भी इसी सजगता का परिचय दिया। उन्होंने *अभ्युदय* के माध्यम से अपनी वैचारिक मनीषा को सर्वत्र प्रसारित करने का एक सफल उद्यम किया। वह अपनी व्यस्तता के बाद भी *अभ्युदय* व अन्य पत्रों पर अपनी दृष्टि रखते थे। वास्तव में *अभ्युदय* के प्रथम 'संपादकीय' से ही मालवीय जी के उद्देश्यों और

1. लक्ष्मीशंकर व्यास, 'महामना मालवीय जी और पत्रकारिता', *नागरी प्रचारिणी पत्रिका,* 'मालवीय शती विशेषांक', संवत् 2018 विक्रमी, अंक 2-4, पृ० 572
2. *वही,* पृ० 574
3. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 29
4. पं० ब्रजमोहन व्यास, 'महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय के संस्मरण', *सरस्वती,* जुलाई, 1961, पृ० 24-25

आदर्शों की पड़ताल की जा सकती है। सन् 1907 में लिखा गया यह 'संपादकीय' मालवीय जी की पत्रकारिता-संबंधी नीतियों, आदर्शों, विचार और आकांक्षाओं को समग्रता से व्याख्यायित करता है—[4]

''अभ्युदय' का अर्थ है— सब ओर से उदय, ऊपर उठना। देश के अभ्युदय का अर्थ है देश का, अर्थात् देश के निवासियों का सब ओर से उदय। स्थायी सुख-संपत्ति और प्रभाव उसके चिह्न और परिणाम हैं। सुख धन से होता है। धन धर्म से, सदाचार से, विद्या और बुद्धि की वृद्धि से होता है। विद्या और बुद्धि धर्म के आवश्यक अंग हैं। मनु भगवान् के समय से तत्त्वदर्शी इस विषय में एकमत हैं। इसलिए विद्या और बुद्धि की वृद्धि करना हमारा परम कर्तव्य है। बिना उसके धर्म पूरा नहीं हो सकता, बिना उसके धन नहीं हो सकता, बिना उसके सुख नहीं हो सकता।

देश के थोड़े से मनुष्यों को सुख प्राप्त होने से देश का अभ्युदय नहीं कहा जा सकता। जब देश के सब सामर्थ्यवान् और पाप से बचे मनुष्यों को सुख प्राप्त हो और वह सुख देश में स्थायी हो, क्षणिक न हो और प्रभाव के साथ युक्त हो, तभी उस देश के विषय में कहा जा सकता है कि उसका अभ्युदय हुआ है। सुख स्थायी तभी हो सकता है, जब वह धर्म से उत्पन्न हो और धर्म से रचित हो। अधर्म से उत्पन्न सुख अथवा अधर्म से रक्षित सुख जैसा अन्याय या अत्याचार से, चोरी व बरजोरी से पाए हुए धन का सुख, अपने से ही निर्बल या असहायों पर न्याय-विरुद्ध अधिकार के व्यवहार से उत्पन्न सुख, धर्म वा नीति के विरुद्ध विषय-भोग का सुख स्थायी नहीं होता है और उसका परिणाम विष से भी अधिक कड़वा होता है। इसलिए अभ्युदय से प्रथम धर्म, द्वितीय बिना धर्म के विरोध के उपार्जित धन और तृतीय धर्म और अर्थ के विरोध बिना प्राप्त होनेवाला काम, अर्थात् विषय-सुख आवश्यक है। इन्हीं तीन को प्राचीन आचार्यों ने त्रिवर्ग कहा है। प्रभाव की इसलिए आवश्यकता है कि हम अपने सुख की वृद्धि और रक्षा कर सकें और उस पर लोग आघात करने का साहस न करें, यदि करें तो हम अपनी-अपनी बुद्धि, वीर्य और उत्साह से अपने को उस चोट से बचा सकें। यह धर्म और धन से होता है। जिन उपायों से

1. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 30-34

हमारे देशवासी त्रिवर्ग का साधन कर सकें, जिन उपायों से वे सुखी और सम्पन्न, धनवान् और धर्मवान्, बलवान् और प्रतापवान् हों, उन उपायों के जन्म, स्थिति और वृद्धि में सहायक होना इस पत्र का उद्देश्य है। 'अभ्युदय' इसका नाम इसलिए रखा गया है कि जैसे यह ईप्सित अर्थ का प्रकाश करता है, वैसे दूसरा शब्द नहीं करता।

हमारी अभिलाषा मंद नहीं है। पृथ्वी-मण्डल पर जितने पर्वत हैं, उनमें सबसे ऊँचा पर्वत नगाधिराज हिमालय है। उसका सबसे ऊँचा धवल शिखर पृथ्वी के सब पर्वतों की धवल चोटियों के ऊपर आकाश को शोभित करता है। हमारी प्रार्थना और अभिलाषा है और परमेश्वर इसको पूरी करेगा कि हमारे देश का अभ्युदय पृथ्वी के किसी और देश के अभ्युदय से किसी अंश में कम न रहे, वहा चढ़ा-बढ़ा रहे, जैसा कि हिमगिरि के शिखर और पर्वतों के शिखरों से चढ़े-बढ़े हैं। हमारा देश नूतन, अभिज्ञात, ऐसा देश जिसका कल पता लगा हो, नहीं है। इसके वासी अमेरिका के पश्चिमीय हिंद के नाम से प्रसिद्ध देश के निवासियों के समान सभ्यताविहीन नहीं है। हमारा देश प्राचीन है और उस समय में सभ्यता के शिखर को चूम चुका है, जब कई और देशों के लोग जंगलों में नंगे घूमते थे व असभ्य रीति से अपना जीवन बिताते थे। कालचक्र की गति में पड़ हम बहुत नीचे गिर गए हैं, किंतु अब जब हमको फिर चेतना हुई है और अपने योग्य दशा में पहुँचने की इच्छा हुई है तो हम अपने प्राचीन पुनीत आर्य-कुल और अपने पूर्वजों की उन्नत दशा के विचार से, अपने अन्य देशों के भाइयों की वर्तमान उन्नति की दशा के विचार से तथा सबसे ऊपर अपने परम कल्याण के विचार से किसी ऐसे अभ्युदय से संतुष्ट नहीं हो सकते, जो ऊँची-से-ऊँची उन्नति की दशा से कुछ भी नीचा हो। हम अमेरिका और इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, जापान, ग्रीस, इटली आदि देश की उन्नति का इतिहास पढ़ते हैं।

पुस्तकों के द्वारा और समाचार-पत्रों के द्वारा तथा कहीं-कहीं अपने नेत्रों से हम लोग देख रहे हैं कि हमारे इन देशों के बसनेवाले भाई नित्य-नित्य उन्नति के सोपान पर ऊपर चढ़ते चले जाते हैं। जितना ही ये हमसे ऊपर चढ़ गए हैं, उतना ही ये हमको नीचे छोड़ते चले जाते हैं। अपने पुरुषार्थ और अपनी उन्नति से वे हमको लजा रहे हैं और बड़ी प्रबल

रीति से हमको उपदेश कर रहे हैं कि हम अपनी गिरी दशा से उद्धार करें। ऐसी दशा में यह सम्भव नहीं है कि हम अपनी वर्तमान दशा से संतुष्ट रहें। हमारे हृदय के भीतर से भी हमको कोई शक्ति प्रेरणा दे रही है कि जो उन्नति उन भाग्यवान् देशों ने की है, उसी उन्नति के लिए हम यत्न करें।

उसी उन्नति की हमको अभिलाषा है। इतना ही नहीं, उससे कुछ अधिक भी चाहते हैं। देशों में केवल धन की उन्नति होने से कुछ दोष भी उत्पन्न हुए हैं। हम चाहते हैं कि जिस प्रकार चीनी की चाशनी में दूध की छींटें डालकर उसके मैल को काटते हैं और उसको पवित्र करते हैं, उसी प्रकार केवल धन की उन्नति के दोषों से अपने देश-बांधवों को बचाने और उनको मनुष्यत्व के पूरे महत्त्व को पहुँचाने के लिए उनकी सबसे उत्कृष्ट आध्यात्मिक उन्नति भी हो, जिसके द्वारा वे और-और जातियों को भी आध्यात्मिक उन्नति के पथ में अपने साथ लेकर समस्त संसार का असीम उपकार करें। अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जापान, जर्मनी में मनुष्यों को अपने पुरुषत्व की ऊँची-से-ऊँची अवस्था को पहुँचाने के लिए बहुत अवसर और सुभीते हैं। उनको उन देशों में अपने पुरुषत्व के अनेक गुणों को पूरा प्रकाश करने और देश की सेवा करने का पूरा अवसर है। ये स्वच्छंद हैं और अपनी मर्यादा के अनुसार अपने ऊपर शासन करते हुए अपने देश और जाति का वैभव तथा गौरव बढ़ाते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे देश-बंधु हमारे इंग्लैण्ड-निवासी भाइयों के बराबर स्वाधीनता का सुख अनुभव करें और अपने देश में आप शासन करें। वस्तुतः हमारा पूर्ण अभ्युदय तभी होगा, जब हमको उतनी ही स्वाधीनता और सामर्थ्य प्राप्त होगी, जितनी हमारे उन देशों के भाइयों को है।

समुद्र के किसी टापू पर लहरों से फेंका हुआ असहाय, अकेला, तनहीन, बलहीन मनुष्य, जो हिमालय के ऊँचे शिखर पर पहुँचने का मनोरथ करे, तो उसका मनोरथ उपहास के योग्य नहीं मालूम होगा, जितना हमारा अपनी वर्तमान दशा में ऊपर लिखे मनोरथों का प्रकाश करना, किन्तु जैसा हमको विश्वास है कि ईश्वर है, वैसा ही इसको यह निश्चय है कि हमारे ये मनोरथ पूरे हो सकते हैं और एक दिन पूरे होंगे। केवल एक शर्त हैं कि हम मिथ्या अभिमान को छोड़कर शुद्ध धर्म की बुद्धि से धैर्य के साथ अपने कर्त्तव्य को करें।

देश के अभ्युदय की अभिलाषा में देश-हितैषी सब एकमत हैं, परन्तु उसके सिद्ध करने के क्या उपाय हैं और देश, काल, अवस्था के विचार से हमको किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए, इसमें कुछ मतभेद हैं।

किन उपायों से देश को अभ्युदय प्राप्त होगा, उसके विचार के प्रारम्भ में हमको एक बात स्पष्ट रीति से समझ लेनी उचित है। प्रत्येक देश या जाति का अभ्युदय मूल में उसकी प्रजा के आत्मपौरुष पर निर्भर है। कोई राजा वा शासन किसी देश की प्रजा को तब तक अभ्युदित नहीं कर सकता, जब तक उस देश की प्रजा अपने पौरुष को पूर्ण रीति से काम में न लावे। किन्तु राजा वा शासन प्रजा को अपना अभ्युदय-संपादन करने में बहुत सहायता भी दे सकता है और उनके मार्ग में बहुत विघ्न भी डाल सकता है। हमारे मनोरथ बड़े ऊँचे हैं। उनका पूरा करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है और बहुत समय माँगता है। इसमें सफलता के लिए आवश्यक है कि जितनी शक्तियाँ इस देश में वर्तमान हैं, उन सबसे जहाँ तक मिल सके, धन्यवादपूर्वक सहायता लें। अविवेक या दुराग्रह से, पक्षपात व मूर्ख-अभिमान से, यदि हम किसी ऐसी शक्ति को अपने इस पुनीत मनोरथ के पूरा करने में सहायक बनाने में चूकते हैं व निष्कारण अपनी विरोधिनी बनाते हैं, तो हम उस अंश में देश के प्रति अपराधी हैं।

इस समय इस देश में दो बड़ी शक्तियाँ हैं। एक बड़े प्रबन्ध से बँधी, प्रबल, विस्तृत, गवर्नमेंट की शक्ति, जो देश का सौ करोड़ के लगभग कर वसूल करती है और उसका देश-संबंधी कार्यों में व्यय करती है तथा देश की एक सीमा से दूसरी सीमा तक अपने बनाए नियमों से प्रजा पर शासन करती है। दूसरी शक्ति प्रजा की है, जिसकी सत्ता को सोचकर हम आशावान् हैं जो हमारे हृदय के बलवान् होने का कारण है, किन्तु जिसका हम अधिक-से-अधिक वर्णन करें तो उसे अभी माँ की गोद से उतरे हुए बालक की शक्ति से अधिक नहीं कह सकते। जो अब भी भूख-प्यास मिटाने और अपने को शीत-घाम से बचाने की भी सामर्थ्य नहीं रखता। हमारी सर्व प्रार्थना और सब यत्न इस बात के लिए है और होने चाहिए कि वह शक्ति दिन-दिन बढ़े। ईश्वर करे, यह बढ़े! किन्तु इस भाव के साथ हमको यह नहीं मान लेना चाहिए कि वह दूसरी बड़ी शक्ति अवश्य ही हमारे इन मनोरथों में बाधक और विरोधिनी है। यदि हम निष्पक्ष विचार

से देखेंगे तो वर्तमान अवस्था और विरोधिनी है। यदि हम निष्पक्ष विचार से देखेंगे तो वर्तमान अवस्था में उसको हम बहुत अंशों से हमारे अभ्युदय की सामग्री एकत्र करने के लिए आवश्यक और सहायक पाएँगे और यदि हम बिना अपनी ऊँची अभिलाषा को मंद किए तथा बिना देशभक्त सज्जनों की उचित स्वतंत्रता को छोड़े अपनी ओर से गवर्नमेंट के प्रति मित्रभाव से वर लेंगे तो हम गवर्नमेंट को अपनी उन्नति और अभ्युदय में अब से अधिक सहकारी बना सकेंगे। यह हमारा दृढ़ विश्वास है, परन्तु मान भी लिया जाए कि गवर्नमेंट हमारे इन मनोरथों के पूरा करने में सहायक नहीं होगी, तो भी हमारा यह धर्म है कि हम निष्कारण ऐसी बातें न करें, जिनसे गवर्नमेंट का और हमारा विरोध बढ़े। वह हमारे अभ्युदय में सहायक नहीं होगा। यदि हमारा कर्त्तव्य करने में गवर्नमेंट हमसे विरोध माने भी, तो हम केवल उस पर खेद प्रकट करेंगे। गवर्नमेंट के अविवेक से हम अपने कर्त्तव्य के करने में शिथिल न होंगे। इसलिए अपने देश की उन्नति और अभ्युदय के उपायों को सोचने और प्रकाश करने में हमारा यह यत्न रहेगा कि गवर्नमेंट और प्रजा— इन दोनों की शक्तियों को जहाँ तक अनुकूल और नियुक्त कर सकें, करें। हमको विश्वास है कि इस मार्ग में दृढ़तापूर्वक चलते हुए हम अपने देश की उत्तम सेवा कर सकेंगे।'

इस प्रकार मालवीय जी ने भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों, आदर्शों की प्रतिस्थापना व प्रसार का कार्य अपने लेखन के माध्यम से करने का प्रयत्न किया। ध्यातव्य है कि मालवीय जी की बाल्यकाल से ही धार्मिक एवं सांस्कृतिक राष्ट्रजीवन के प्रति अगाध श्रद्धा थी। उनकी पत्रकारिता भी उनके धर्मनिष्ठ जीवन व व्यक्तित्व से प्रभावित थी। यहाँ यह उल्लेख करना समीचीन जान पड़ता है कि मालवीय जी ने अपने सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र में हिंदुत्व-आधारित रीति-नीति का अनुसरण किया। वह हिंदू समाज की निरन्तर पतनीय होती दशा से व्यथित थे। हिंदू समाज का जागरण व हिंदुत्व-आधारित निष्ठा पर राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण ही उनके वैचारिक अधिष्ठान का महत्त्वपूर्ण सोपान था। विशेषतः उन भीषण परिस्थितियों में, जब 20वीं शती के प्रारम्भ से लेकर भारत की स्वाधीनता के काल में मुस्लिमों के पाशविक अत्याचारों और जनसंहारों से भारत की भूमि को निर्दोष हिंदुओं के रक्त से सींचा जा रहा था, हिंदू समाज को संबल प्रदान करने के लिए वैचारिक शक्ति की आवश्यकता थी। तब मालवीय जी ने हिंदू समाज को आत्मनिष्ठ व वैचारिक रूप से

शक्तिसम्पन्न बनाने के उद्देश्य से गुरु पूर्णिमा (10 जुलाई, 1933) के पवित्र दिन साप्ताहिक *सनातन धर्म* का प्रकाशन आरम्भ किया।[1] इस पत्र में मालवीय जी ने अपने चिन्तन की विराट् संकल्पना को चरितार्थ करने का सार्थक प्रयास किया। उनका मानना था कि जैसे शरीर रक्षा के लिए भोजन आवश्यक है, उसी प्रकार मनुष्य को आध्यात्मिक भोजन की भी आवश्यकता होती है।[2] मालवीय का दृढ़ विश्वास था कि सनातन धर्म पृथ्वी पर सबसे पुराना और पुनीत धर्म है। वह अपने इस विश्वासरूपी आग्रह को जन-जन तक सर्वव्यापी करना चाहते थे। *सनातन धर्म* सन् 1947 तक हिंदू संस्कृति के वैचारिक अधिष्ठान के रूप में हिंदू समाज को जागृत करता रहा। मालवीय जी ने सनातन धर्म का प्रकाशन करते हुए लिखा,[3] 'मेरा विश्वास है कि हिंदू जाति की रक्षा और उन्नति का मूल साधन उसकी धार्मिकी शिक्षा है और इसलिए मैं हृदय से चाहता हूँ कि इस विषय पर समस्त सनातन धर्मानुयायी नेताओं का ध्यान आकर्षित हो और हम सब लोग मिलकर इस पुनीत धर्म की रक्षा और प्रचार का संतोषजनक प्रबंध करें। यह *सनातन धर्म* सनातन धर्मजगत् में उस धर्म का ज्ञान और सच्चे स्वरूप का प्रचार करने और उसके द्वारा न केवल सनातनधर्मियों की परंतु सारे जगत् की सेवा करने के अभिप्राय से प्रकाशित किया जा रहा है। यह खेद की बात है कि इस समय सनातनधर्मी जगत् में कुछ विषयों, विशेषकर अंत्यजोद्धार के विषय में बहुत मतभेद हो रहा है। प्रार्थनापूर्वक इस पत्र का प्रयत्न होगा कि वह इस मतभेद को दूर करे और समस्त धर्मानुयायियों, जिनमें अंत्यज भी हैं, की धार्मिक शिक्षा और उन्नति के लिए उचित उपाय किए जाएँ। जैसा मुझे सनातन धर्म की सत्यता और उदारता से विश्वास है, वैसा ही मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि भगवान् विश्वनाथ के आग्रह से यह हमारी ऊँची कामना सफल होगी।'

मालवीय जी *सनातन धर्म* के द्वारा एक ओर हिंदू-धर्म में समयानुरूप प्रचलन में आई कुरीतियों से समाज को अवगत कराकर उसके पुनरुत्थान का कार्य कर रहे थे तो वहीं दूसरी और अंग्रेज़ों व मिशनरियों द्वारा प्रायोजित पाश्चात्य संस्कृति के दुश्चक्र से अपनी संस्कृति व परम्परा को धार्मिक जागरण के माध्यम से बचाने के

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय का जीवन-चरित*, पृ० 47
2. *सनातन धर्म*, वर्ष 1, अंक 5 में प्रकाशित मालवीय जी के लेख
3. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 42; *सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन*, खण्ड द्वितीय, लक्ष्मीशंकर व्यास और 'महामना मालवीयजी और पत्रकारिता' शीर्षक लेख, पृ० 21

लिए प्रयासरत थे। *सनातन धर्म* में धार्मिक विचारों के साथ-साथ साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन, राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र-जैसे विषयों पर भी लेख प्रकाशित होते थे। इसके अतिरिक्त गोरक्षा, हिंदू-पर्वोत्सव, हिंदू-मानबिन्दुओं आदि सामाजिक एवं धार्मिक विषयों पर भी लेख रहते थे। वस्तुतः यह समाचार-पत्र नहीं , अपितु विचार-पत्र था।[1] इससे भी कहीं बढ़कर एक मिशन था।

पूज्य मालवीय जी पत्रकारिता को एक कला मानते थे और उसके वैज्ञानिक स्वरूप को महत्ता प्रदान करते थे। समाचार-पत्र के समाचारों, आलेखों व उसकी विषयवस्तु में जनसामान्य की सोच बढ़ाने के लिए उन्होंने पत्रकारिता में अनेक प्रयोग किये। उन्होंने राष्ट्रोत्थानमूलक संपादकीय नीति के विविध स्वरूपों के साथ-साथ पत्र की विषय-सामग्री, भाषा, मर्यादा, स्वतंत्रता, लेखकों का पारिश्रमिक, विज्ञान आदि के विषयों में महत्त्वपूर्ण निर्देश दिये। *हिंदुस्तान, अभ्युदय* तथा *सनातन धर्म* में प्रकाशित उनके लेखों के अध्ययन, मनन से हम स्वस्थ और आदर्श पत्रकारिता के स्वरूप के दर्शन के साथ-साथ उसके पालन करने की प्रेरणा भी प्राप्त कर सकते हैं।[2] मालवीय जी ने समाचार-पत्रों की पाठ्य सामग्री के रूप में तत्कालीन समस्याओं से संबंधित विषय-वस्तु तथा वैचारिक प्रबोधन का तादात्म्य पाठकों के साथ स्थापित किया। उस विषय-सामग्री को रुचिकर बनाने के लिए, जिससे देश-समाज की ठीक दिशा सुनिश्चित हो सके, मालवीय जी ने *अभ्युदय* में पत्रकारों के लिए प्रशिक्षण व विकास के लिए एक 'परामर्श योजना' प्रकाशित किया। यह सुझाव पत्रकारिता में मालवीय जी के गहन चिन्तन एवं दूरदृष्टि का परिचायक है। मालवीय जी अपनी इस योजना से पाठ्य सामग्री का प्रतिदिन के अनुरूप विकेन्द्रिकरण करना चाहते थे। उनका अभिमत था कि दैनिक पत्र का प्रतिदिन के लिए कोई-न-कोई विषय नियत कर देना चाहिए। सोमवार को आप साहित्य पर लिखते हैं, तो मंगलवार को ग्राम-संगठन पर लिखिए, बुधवार को शारीरिक उन्नति पर लिखते हैं तो बृहस्पतिवार को शिक्षा पर लिखिए। निश्चित क्रम के अनुसार हमें दिन बाँट लेने चाहिये। नियत दिन पर उस विषय पर अवश्य लिखना चाहिए। इस प्रकार हर पाठक को अपनी रुचि के अनुसार मसाला मिल जायेगा। यदि ढंग से, परिश्रम के साथ पत्र का संपादन और संगठन किया जाये तो ग्राहक-संख्या भी बढ़ेगी और

1. सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 36
2. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन,* खण्ड द्वितीय में लक्ष्मीशंकर व्यास का 'महामना मालवीय जी और पत्रकारिता' शीर्षक लेख

जनता का विशेष उपकार भी होगा।[1] ध्यातव्य है कि उस समय पत्रकारिता केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं थी, वरन् देशसेवा का अत्यन्त श्रेष्ठ एवं श्रेयस्कर माध्यम भी थी।[2] निश्चय ही 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में महामना मालवीय जी का उक्त निर्देश देश के समस्त पत्रकारों तथा संपादकों के लिए मननीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।[3] पूर्व में उल्लेखित है कि पत्रकारिता को लेकर मालवीय जी का दृष्टिकोण वैचारिक साध्य का था न कि व्यावसायिक साधन का। इसलिए मालवीय जी का लक्ष्य यह रहता था कि अधिक-से-अधिक सामग्री पाठकों तक पहुँचे जिससे भारत की स्वाधीनता के पक्ष में जन-जागृति का संचार हो सके।

मालवीय जी समाचार-पत्रों में विज्ञापन प्रकाशित करने के विरोध में थे, विशेषकर ऐसे विज्ञापन, जिनका समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था।[4] इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उन्होंने *सनातन धर्म* में तीन वर्ष तक किसी प्रकार का कोई विज्ञापन प्रकाशित नहीं होने दिया।[5] पं० मदनमोहन मालवीय समाचार-पत्रों में लिखनेवाले लेखकों के उचित पारिश्रमिक और उनके हित व कल्याण को लेकर भी जागरूक थे। इसलिए 20वीं शती के प्रथम दशक में हिंदी-पत्रों में लिखनेवाले लेखकों के पारिश्रमिक का प्रश्न भी उन्होंने उठाया और इस संबंध में एक नीतिगत सिद्धान्त निश्चित करने के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) से परामर्श किया था। प्रमाणस्वरूप उपलब्ध है उस दुर्लभ ऐतिहासिक पत्र के अंश[6] –

> 'यद्यपि अभी यह साहस और अनावश्यक साहस मालूम होगा तथापि मेरी यह इच्छा है कि मैं *अभ्युदय* में लेखकों को कुछ भेंट करने का क्रम जारी करूँ। ऐसे लेखक अभी बहुत कम हैं जिनके लेखों के लिये कुछ भेंट करना मुनासिब होगा। किन्तु **'स्वल्पारंभा-क्षेमकराः'**– इस न्याय से मैं

1. *अभ्युदय,* 05 मई, 1907; उमेश दत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 57; सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, ए 41
2. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय,* प्रथम खण्ड, संवत् 1993 विक्रमी, काशी, पृ० 40
3. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन,* द्वितीय खण्ड, पृ० 23
4. *वही,* पृ० 38
5. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *आधुनिक भारत के निर्माता मदनमोहन मालवीय,* द्वितीय संस्करण, सन् 1980, पृ० 46
6. *कादम्बिनी,* फरवरी 1987, पृ० 29-30, (डॉ० लक्ष्मीशंकर व्यास के लेख से); उमेश दत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 64-65, सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 44

समझता हूँ कि उन लेखों के लिये, जो आपके वैदिक काल की स्त्रियों के समान आदर सहित पत्र में छापे जायें, कुछ पत्र-पुष्प अर्पण किया जाय। कृपाकर इस विषय में अपनी सम्मति लिखिये। मेरा विचार है अभी सवा रुपया कालम में प्रारम्भ किया जाय, और ज्यों-ज्यों भेंट की अर्थ-संबंधी अवस्था अच्छी होती जाय, त्यो-त्यों भेंट की रेट बढ़ायी जाए। इससे किसी योग्य मित्र को कुछ ख्याल करने के लायक आय वृद्धि तो होगी नहीं, किन्तु इससे एक ऐसा क्रम प्रारम्भ हो जाएगा कि जिससे जो मित्र पत्र के बनाने और बढ़ाने में सहायक होंगे, वे आगे चलकर देशहित और मातृभाषा के हित साधन के सन्तोष के अतिरिक्त, पत्र के लाभ से कुछ आर्थिक लाभ उठाने का भी संतोष अनुभव करेंगे। मुझे आशा और विश्वास है कि यदि आप दो-तीन और मित्र, जिनको मैं लिख रहा हूँ, पत्र को पूरी सहायता देंगे तो अचिरकाल में इसके आठ-दस हज़ार ग्राहक हो जावेंगे।

विशेष आपको लिखना आवश्यक नहीं। मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि जिस भाव से मैं इस पत्र को लिख रहा हूँ, उसी भाव से आप इसको विचारेंगे और प्रति सप्ताह एक या दो लेख से सहायता करेंगे।

मैंने 'विधवा विवाह' का भाग इसलिए निकाल दिया था कि उसमें आपका मत नहीं प्रकाशित था और उससे लेख सर्वजन प्रिय न रहता। मैं आशा करता हूँ आप इससे अप्रसन्न न हुए होंगे।

बाबू मिश्रीलाल के लेख के विषय में कल लिखूँगा।

भवदीय

मदनमोहन मालवीय'

पं० मदनमोहन मालवीय के जीवन्त व्यक्तित्व की यह विशेषता थी कि उन्होंने सार्वजनिक जीवन के जिस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया, वहाँ पूर्ण निष्ठा, लगन, परिश्रम, समर्पण व सेवाभाव से उस क्षेत्र में विद्यमान चुनौतियों का सामना किया तथा प्रत्येक क्षेत्र में अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी। यही नहीं, वह जिस कार्य को हाथ में लेते थे, उस कार्य में वह मील का पत्थर सिद्ध होते थे। यह बात उनके पत्रकार-जीवन में सन्दर्भ में भी सार्थक प्रतीत होती है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उन्होंने त्याग, समर्पण एवं सहयोग का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया। वस्तुतः मालवीय जी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बृहत् दृष्टिकोण रखते थे। यह उनके

हृदय की विशालता ही थी कि उन्होंने न सिर्फ़ स्वयं के समाचार-पत्रों को सफलता के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाया, अपितु तत्कालीन अन्य समाचार पत्र-पत्रिकाओं को भी खड़ा करने में यथाशक्ति सहयोग किया। मालवीय जी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने में स्वयं के व परिवार के हितों की भी चिन्ता नहीं की। उन्होंने ऐसे अनेक अवसरों पर, जिसमें समाज व राष्ट्र का हित छिपा होता था, अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया। वह त्याग व समर्पण की वास्तविक प्रतिमूर्ति थे।

मालवीय जी ने 24 अक्टूबर, 1909 को अंग्रेज़ी-दैनिक *द लीडर* प्रारम्भ किया। उसके प्रथम संपादक स्वयं मालवीय जी ही थे तथा पं० मोतीलाल नेहरू (1861-1931) संचालक-मण्डल के प्रथम अध्यक्ष थे।[1] *द लीडर* के प्रति मालवीय जी हमेशा ही संवेदनशील रहा करते थे। प्रारम्भ होने के डेढ़ वर्ष पश्चात् लीडर को घाटा होने लगा। मालवीय जी उन दिनों हिंदू विश्वविद्यालय की योजना को मूर्तरूप देने में व्यस्त थे। *द लीडर* के उन दिनों के घाटे की स्थिति से संचालकों ने मालवीय जी को अवगत कराया तो उन्होंने तत्काल कहा, "मैं लीडर को मरने नहीं दूँगा"।[2] और सचमुच उनकी तत्काल सहायता के कारण *द लीडर* अकाल मृत्यु से बच गया।[3] मालवीय जी तत्काल अपनी धर्मपत्नी के पास पहुँचे और बोले[4] "यह मत समझो कि तुम्हारे चार ही पुत्र हैं, यह दैनिक *लीडर* तुम्हारा पाँचवाँ पुत्र है। अर्थहीनता के कारण यह बड़े संकट में पड़ गया है। क्या मैं पिता के रूप में उसे मृत्यु के मुख में जाते देख सकता हूँ ! अपने पति के वचन सुनकर उनकी पत्नी रो पड़ीं। उन्होंने अपने सब गहने निकालकर और 3,500/- रुपये में बेचकर वह रुपया मालवीय जी को दे दिया। यह उनका *लीडर* के लिए पहला दान था। फिर वह अन्य मित्रों के पास सहायता के लिए पहुँचे और कहा, **"मर जाऊँ मांगू नहीं, अपने तन में काज। परमारथ के कारने मोहि न आवे लाज।"** वस्तुतः यह दृष्टांत मालवीय जी के जीवन की भावनात्मक अभिव्यक्ति है। मालवीय जी ने अपने कार्य एवं उद्देश्यों का अपने जीवन से भावनात्मक संबंध स्थापित कर लिया था। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मालवीय जी अपने उद्देश्यों के लिए जीते थे और उनके निजी जीवन

---

1. *द नेहरू*, वी०आर० नन्दा, लन्दन, 1962, पृ० 111
2. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय का जीवनचरित*, पृ० 46
3. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *आधुनिक भारत के निर्माता पं० मदनमोहन मालवीय*, पृ० 26
4. *वही*, पृ० 26

और लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता परस्पर पर्याय थे।

मालवीय जी उदारमना थे और इसलिए उन्होंने समकालीन समाचार-पत्रों को भी यथासामर्थ्य सहयोग प्रदान किया। मालवीय जी की पत्रकारिता का उद्देश्य निजभाषा, समाज और देश के उत्थान से जुड़ा था। वह पत्रकारिता के माध्यम से स्वाधीनता आन्दोलन के लिए वैचारिक संघर्ष करने के लिए कटिबद्ध थे और दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा देते और उनकी सहायता करते।[1] यही कारण है कि मालवीय जी स्वयं की पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन व संपादन में साथ-साथ दूसरी पत्र-पत्रिकाओं को भी लेखकीय, पत्रकारीय एवं आर्थिक मदद पहुँचाया करते थे।[2] उन्होंने *हिंदुस्तान रिव्यू* (1893), *इण्डियन पीपुल* (1903), *स्वराज्य* (1907), *महारथी, विश्वबंधु, मॉडर्न रिव्यू* को किसी-न-किसी रूप में सहयोग प्रदान किया।[3]

महामना मदनमोहन मालवीय का पत्रकारिता-चिन्तन व आदर्श उनके कार्यों में अभिव्यक्त था। मालवीय जी का पत्रकारिता के प्रति प्रेम और आदर्श *स्वराज्य* पत्र के लिए किए गए उनके कार्यों से प्रकट होता है। 1907 में प्रयाग से भारतमाता सोसायटी द्वारा **'हिंदुस्तान के हम हैं, हिंदुस्तान हमारा है'** ध्येय-वाक्य के साथ प्रारम्भ हुए इस उर्दू-पत्र को शीघ्र ही ब्रिटिश शासन के कोपभाजन का शिकार होना पड़ा। सन् 1909 में *स्वराज्य* के आठ संपादकों पर राजद्रोह का मुक़दमा चलाया गया। ऐसी स्थिति में मालवीय जी ने ही उसे आर्थिक एवं मानवीय सहायता उपलब्ध करायी। मालवीयजी ने न केवल पत्र-प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता दी, अपितु जेल गए संपादकों के परिवारों के भरण-पोषण के उत्तरदायित्व का भी निर्वहन किया। यही नहीं, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन (1882-1902) को इन संपादकों की ओर से मुक़दमा लड़ने को भी प्रेरित किया। यह मुक़दमा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की लड़ाई के दुर्लभ उदाहरण के रूप में इतिहास में दर्ज़ है।[4] मालवीय जी के बहुत-से मित्रों को एक उर्दू साप्ताहिक पत्र के संपादकों के

1. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 43
2. वही, पृ० 43; आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *आधुनिक भारत के निर्माता पं० मदनमोहन मालवीय*, पृ० 27
3. वही, पृ० 27; *मालवीय कोमोमोरेशन वॉल्यूम*, पृ० 1001, धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 43, एवं सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 36
4. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 44

प्रति मालवीय जी के प्रेम पर आपत्ति थी। वे चाहते थे कि मालवीय जी उर्दू-साप्ताहिक और उसके संपादकों की कोई सहायता न करें, लेकिन मालवीय जी ने विशाल उदारता, मानवता का परिचय देते हुए कहा कि[1] "मैंने जो कुछ किया है, वह इस देश में प्रेस की स्वतंत्रता दृढ़ करने के लिए किया है। यदि मैं ऐसा न करता तो मैं विचार-स्वातंत्र्य समाप्त करने के दोष का भागी होता। जहाँ तक इन युवकों की सहायता की बात है, मैं कैसे न करता? क्या कोई पिता अपने पुत्रों को केवल मतभेद के कारण छोड़ता है और विशेषतः ऐसे पुत्रों को, जिनकी देशभक्ति चमचमाते हुए स्वर्ण के समान समुज्ज्वल है? मैं यह पाप अपने सिर नहीं लेना चाहता कि द्रोणाचार्य के समान अभिमन्यु-हत्या का दोषभागी बनूँ।" वस्तुतः ये विचार मालवीय जी के उस विशाल हृदय की विराट् अभिव्यक्ति है जिससे शब्द-सह राष्ट्रभक्ति के दर्शन होते हैं।

पं० मदनमोहन मालवीय ने प्रेस व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए पत्रकारिता के संगठनात्मक स्वरूप की आवश्यकता पर भी बल दिया। उन्होंने पत्रकार-पत्रकारिता के उन्नयन व संवर्धन तथा सुरक्षा के लिए कुछ नवीन प्रयोग किये। पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि मालवीय जी ने पत्रकारिता का स्तर सुधारने और उसे समाज और देशानुकूल बनाने के लिए भारत के श्रेष्ठ पत्रकारों व लेखकों को एक संगठन-प्रक्रिया में आबद्ध करने का प्रयत्न किया। मालवीय जी ने दैनिक *हिंदुस्तान* में संपादक रहते हुए सह-संपादकों, लेखकों और कवियों को उस समाचार-पत्र के माध्यम से राष्ट्र-सेवा करने के लिए प्रेरित किया। वस्तुतः मालवीय जी ब्रिटिश शासन की समाचार-पत्र विरोधी नीतियों को समाज-जागरण व राष्ट्र-जागरण के कार्यों में सबसे बड़ी बाधा मानते थे। इसके अतिरिक्त मालवीय जी पत्रकारिता को देशसेवा का तथा साथ ही भारतीय संस्कृति-सभ्यता से संबंधित विभिन्न पहलुओं के प्रसार अर्थात् समाज-जागरण के माध्यम के रूप में लेते थे। इसलिए उन्होंने योग्य पत्रकारों, लेखकों, कवियों को प्रोत्साहन देने का कार्य किया जिससे श्रेष्ठ पाठ्य सामग्री जनसामान्य तक पहुँच सके। इसके लिए आवश्यक था कि प्रेस की स्वतंत्रता बाधित न हो। वस्तुतः मालवीय जी का उद्देश्य पत्रकारों को ब्रिटिश शासन के विरोध तथा भारत की स्वाधीनता के निमित्त एक संगठन-सूत्र में आबद्ध करना था। उन्होंने समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के लिए *अभ्युदय* (1907) का प्रकाशन किया। *अभ्युदय* के प्रारम्भिक समय में ब्रिटिश सरकार का भयानक

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *आधुनिक भारत के निर्माता महामना पं० मदनमोहन मालवीय*, पृ० 27

दमन-चक्र चल रहा था। 1907 में पंजाब में एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र *पंजाबी* की संपादक-संचालक[1] पर सरकार ने मुक़दमा चलाया। संपादक श्री अठावळे की पैरवी लाला लाजपत राय (1865-1928) कर रहे थे। इस पर मालवीय जी ने *अभ्युदय* के 'संपादकीय' में सरकारी दमन-चक्र की निन्दा करते हुए संपादक के कार्य की प्रशंसा करते हुए लिखा : '...ऐसी सरकारी नीतियों से समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता पर आघात होता है। श्री अठावळे ने अपने संपादकीय लेख से एक महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक मामले के ऊपर सरकार और जनता— दोनों का ध्यान आकर्षित किया है। यदि ऐसे मुक़दमों में संपादक को सजा हुई तो समाचार-पत्रों की स्वाधीनता को बड़ी बाधा पहुँचेगी। संतोष इस बात से है कि 'पंजाबी' के संपादक श्री अठावळे ने अपने कर्त्तव्यपालन में हर प्रकार का साहस और दृढ़ता दिखायी।'[2]

पं० मदनमोहन मालवीय ने समाचार-पत्रों की सुरक्षा के लिये ठोस कदम उठाते हुए अप्रैल, 1908 में प्रयाग में राजा रामपाल सिंह के सभापतित्व में 'अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन' का आयोजन किया। मालवीय जी इस सम्मेलन में स्वागताध्यक्ष बने। इस सम्मेलन में मालवीय जी ने कहा, "विदेशी सरकार अपनी दमन-नीति को अत्यधिक व्यापक बनाने के लिए 'प्रेस-एक्ट' और 'न्यूज़-एक्ट' बनाने जा रही है। इससे देश में समाचार-पत्रों की स्वाधीनता समाप्त हो जायेगी। यदि भारतीय समाचार-पत्रों के संपादकों और पत्रकारों ने दृढ़ता के साथ समाचार-पत्रों की स्वाधीनता के हनन का मुकाबला नहीं किया तो भारतीय समाचार-पत्रों का भविष्य ख़तरे में पड़ जायेगा।"[3] इस प्रकार मालवीय जी ने एक ओर तो सभी पत्रों और पत्रकारों को सावधान एवं संगठित किया, वहीं दूसरी ओर यह विश्वास प्रकट किया कि केवल हिंदी में ही नहीं, अंग्रेज़ी-पत्रों के माध्यम से भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा सकता है।[4]

मालवीय जी ने सिर्फ़ समाचार-पत्रों के माध्यम से ही समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष नहीं किया, अपितु भारतीय विधान परिषद् के सदस्य की हैसियत से भी विधान-मण्डल में प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन किया। सन् 1910 में

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन*, द्वितीय, खण्ड, पृ० 28
2. वेंकटेश नारायण तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 37
3. वही, पृ० 37; सीताराम चतुर्वेदी, *आधुनिक भारत के निर्माता मदनमोहन मालवीय*, पृ० 24
4. लक्ष्मीशंकर व्यास, 'महामना मालवीय जी और पत्रकारिता', *नागरी प्रचारिणी पत्रिका*, 'मालवीय शती विशेषांक', संवत् 2018, अंक 2,3, पृ० 580

सरकार ने 'प्रेस एक्ट' विधेयक प्रस्तुतकर प्रेस की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने का षड्यंत्र रचा। ध्यातव्य है कि गोपाल कृष्ण गोखले (1866-1915) इस विधेयक के पक्ष में थे, तो मालवीय जी इस विधेयक को किसी भी स्थिति में पारित नहीं होने देना चाहते थे।

गोखले जी ने परिस्थिति की गम्भीरता की ओर मालवीय जी का ध्यान आकृष्ट करते हुए सलाह दी कि वह काउंसिल में प्रेस-विधेयक का विरोध न करें। मालवीय जी ने गजेन्द्रमोक्ष का पाठ करने के बाद गोखले साहब को सूचित किया कि वह अपनी अंतरात्मा के अनुकूल अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करेंगे, चाहे उसके कारण उनके संबंध में सरकार की कुछ भी धारणा बन जाये।[1] 08 फरवरी, 1910 को मालवीय जी ने प्रेस-विधेयक का डटकर विरोध करते हुए कहा कि यह विधान ग़ैर-ज़रूरी है, क्योंकि प्रचलित फौज़दारी दण्डविधान द्वारा ही समाचार-पत्रों के राजद्रोहात्मक लेखों के विरुद्ध उचित कार्रवाई की जा सकती है। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय समाचार-पत्रों का व्यवहार काफ़ी संतुलित रहा है। सन् 1906 और 1907 में कुछ समाचार-पत्रों ने विरोधपूर्ण कटु वचनों का प्रयोग अवश्य किया था, पर इसका मूल कारण लॉर्ड कर्जन की नीति तथा सरकारी कर्मचारियों के व्यवहार तथा उनके द्वारा अपशब्दों का प्रयोग था।[2] इसके पश्चात् दशा में काफ़ी सुधार हुआ है। लगभग दो वर्ष हुए वायसराय ने स्वयं स्वीकार किया कि इस देश के अनेक पत्र अपना कार्य-संचालन उत्तम रीति से कर रहे हैं, और उनमें से बहुत कम राजद्रोही हैं।[3] मालवीय जी ने आगे कहा, "देश के करीब आठ सौ समाचार-पत्रों में से केवल छः पत्रों द्वारा किसी एक अपराध को दुहराने से यह सिद्ध नहीं होता कि वर्तमान व्यवस्था में राजद्रोह को या राजद्रोह फैलाने में प्रयत्न को सजा देने का कोई प्रबंध नहीं है और उसे दबाने के लिए सब समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का अपहरण करना, उन पर विशेष प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है।"[4] समाज में कुछ लोग अपराधी होते ही हैं, अर्थात् अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करते ही हैं। इसका अर्थ नही हैं कि इस कारण सबके विरुद्ध कोई कार्रवाई की जाय, और निर्दोष को भी सताया जाय।[5]

1. मुकुट बिहारी लाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 196
2. *प्रोसीडिंग*, गवर्नर जनरल की काउंसिल (विधायिका), सन् 1910, जिल्द 48ए, पृ० 130
3. *वही*, पृ० 129
4. *वही*, पृ० 124
5. *वही*, पृ० 132

नये समाचार-पत्रों को ज़मानत देने के लिए बाध्य करना किसी भी तरह न्यायसंगत नहीं है। अपराध करने से पहले ही नये समाचार-पत्रों के सभी भावी संपादकों और संचालकों को राजद्रोही मानकर उनसे भविष्य में सद्व्यवहार के लिए ज़मानत तलब करना कैसे न्यायोचित समझा जा सकता है ?[1] उन्होंने यह भी कहा कि "न्यायालयों में अधिकारों को प्रशासनिक अधिकारियों को सुपुर्द करना सर्वथा अनुचित है। प्रान्तीय सरकारें भी ग़लती कर सकती हैं और करती रही हैं।[2] उन्होंने कहा कि प्रस्तावित विधेयक तो लॉर्ड लिटन के वर्नाकुलर एक्ट से भी कठोर है जहाँ सन् 1878 का अधिनियम प्रान्तीय सरकार को प्रारम्भ में चेतावनी देने का अधिकार दे देता है।[3] मालवीय जी का कहना था कि जनता के हृदय में इस बात का भ्रम पैदा हो गया है कि न्याययुक्त आलोचना का अधिकार, जिससे जनता का हर प्रकार से लाभ है, उससे छीना जा रहा है, और इसलिए यदि यह बिल पास हो गया तो देश में एक नये असंतोष का प्रसार होगा।[4] अंत में मालवीय जी ने सरकार से अनुरोध किया कि इस विधेयक को वापस ले लिया जाए और यदि यह सम्भव न हो तो पुनः विचार के लिए इसे स्थगित कर दिया जाये।[5]

समाचार-पत्रों ने जहाँ 'प्रेस एक्ट' की और उसके साथ ही गोपाल कृष्ण गोखले की कड़ी आलोचना की, वहीं दूसरी ओर मालवीय जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। मालवीय जी को समाचार-पत्रों में छपी गोखले-निन्दा ने आहत किया।[6] उन्होंने बड़े संतप्त हृदय से मुंशी ईश्वरशरण से कहा, "गोखले कायर हैं, मैं बहादुर, यह कहा जा रहा है, यह कितने परिताप की और हृदयविदारक बात है ![7] गोखले जी को अपनी भूल का ज्ञान दो माह बाद हुआ, किन्तु उस समय मालवीय जी के जबर्दस्त विरोध के कारण 'प्रेस-एक्ट' पास नहीं हो सका।[8]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मालवीय

1. *प्रोसीडिंग*, गवर्नर जनरल की काउंसिल (विधायिका), सन् 1910, जिल्द 48ए, पृ० 132
2. *वही*, सन् 1910, जिल्द 48, पृ० 133
3. *वही*, सन् 1910, जिल्द 48, पृ० 132
4. *वही*, सन् 1910, जिल्द 48, पृ० 131, 133
5. *वही*, सन् 1910, जिल्द 48, पृ० 131, 132
6. प्रो० मुकुट बिहारी लाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 198
7. *मालवीयजी : जीवन झलकियाँ*, पृ० 23-24
8. डॉ० उमेश दत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 63

जी ने जिस समय पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी भागीदारी प्रारम्भ की, वह भारत में पत्रकारिता की प्रारम्भिक अवस्था थी। मालवीय जी ने पत्रकारिता से जुड़े विविध विषयों को अपनी योग्यता से लोकप्रिय बनाया। उनके लिए पत्रकारिता जीवन-यापन का विषय नहीं थी। वस्तुतः वह उनके दार्शनिक व राष्ट्रवादी चिन्तन का साधन थी। एक संपादक व पत्रकार के रूप में उनके कार्यों के विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि मालवीय जी के द्वारा पत्रकारिता के क्षेत्र में उतरना उनकी एक रणनीति का ही भाग था। मालवीय जी-जैसे महामानव के लिए संपादक होना कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है। अस्तु वह पत्रकारिता को राष्ट्र-जीवन की प्रगति का एक आदर्श बनाना चाहते थे। भारत की पराधीनता और समाज की पतनीय दशा से उबारने के लिए आवश्यक था कि पत्रकारिता के माध्यम से लोक-भाषा, लोक-संस्कृति, लोक-चेतना का जागरण हो। इसके लिए आवश्यक था कि भारत में पत्रकारिता का समुचित विकास करते हुए इस असंगठित क्षेत्र को संगठित किया जाये। मालवीय जी ने इस दिशा में क्रान्तिकारी सुधार किये। वह समाज और राष्ट्र के प्रति अपने नैतिक कर्तव्यों को यथार्थ रूप देने के लिए पत्रकारिता के माध्यम से भारत का नवोत्थान प्राप्त करना चाहते थे। उनके पत्रकारिता-संबंधी चिन्तन की मूल्यपरकता यह है कि उन्होंने इस क्षेत्र में एक आदर्शपरक योजना द्वारा राष्ट्रीय अस्मिता को उजागर करनेवाले विषयों, जैसे—राष्ट्रभाषा, स्वदेशी, सनातन धर्म, हिंदू-संस्कृति, हिंदू जीवन-पद्धति, गोरक्षा आदि के माध्यम से भारतीय स्वाधीनता की पृष्ठभूमि का मार्ग प्रशस्त किया। यही नहीं, यह उनके जीवट व रचनात्मक व्यक्तित्व का ही परणाम था कि उन्होंने राष्ट्रीय विषयों के साथ-साथ पत्रकारिता के विकास को भी महत्त्व दिया। पत्रकारों का संगठन, प्रशिक्षण, उनके हितों का संरक्षण, पारिश्रमिक-जैसे हितचिन्तक विषयों पर सर्वप्रथम मालवीय जी ने ही ध्यान दिया। उन्होंने अपने विराट् व्यक्तित्व को संपादन के साथ जोड़कर संपादक के पद तथा पत्रकारिता-क्षेत्र को गौरवान्वित किया। यह पत्रकारिता जगत् के लिए ऐतिहासिक गौरव की बात है।

3. पं० मदनमोहन मालवीय : पत्रकारिता के विविध आयाम एवं वैचारिक लोक-जागरण

मालवीय जी ने राजा रामपाल सिंह के दैनिक समाचार-पत्र *हिंदुस्तान* से अपनी पत्रकारिता प्रारम्भ की। वह अपने ज्ञान-व्यक्तित्व व कार्यप्रणाली से कुछ दिनों में पत्रकारिता जगत् के सिरमौर हो गये। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा

सकता है कि मालवीय जी के संपादकत्व काल में *हिंदुस्तान* ने चहुँमुखी प्रगति की और पत्रकारिता के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। यह मालवीय जी के कुशल व्यक्तित्व और बौद्धिक क्षमताओं का ही सुफल था कि अल्पावधि में यह समाचार-पत्र लोक-भाषा, लोक-संस्कृति के रूप में जन-जन की आवाज़ बन गया। यद्यपि उन दिनों पत्रकार के रूप में मालवीय जी का सर्वोच्च ध्येय ब्रिटिश सरकार को विश्वास में रखते हुए पत्रकारिता के क्षेत्र की स्वतंत्रता एवं उनका विकास करना तथा लोकजागरण करते हुए भारत की स्वतंत्रता के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण करना था। इसलिए उन्होंने पत्रकारिता को सरकार व जनसामान्य के परस्पर जीवन्त संबंधों का माध्यम बनाया। मालवीय जी ने 'जनता की चिट्ठी सरकार के नाम, सरकार की चिट्ठी जनता के नाम'-जैसी योजना के आधार पर अपनी पत्रकारिता की प्रारम्भिक कार्यप्रणाली के रूप में क्रियान्वित किया। मालवीय जी ने *हिंदुस्तान* के माध्यम से इसी योजना को मूर्तरूप देने का प्रयास किया। उन्होंने *हिंदुस्तान* में रहते हुए पत्रकारिता में उच्च आदर्श मानक स्थापित किये और श्रेष्ठ पत्रकारों को अपनी संपादकीय टोली में सम्मिलित कर प्रेस की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए संघर्ष किया। सन् 1889 में मालवीय जी के *हिंदुस्तान* से पृथक् होने का दुष्परिणाम यह हुआ कि इस पत्र की लोकप्रियता में भारी कमी आयी। फलतः मात्र 10 वर्षों के पश्चात् 1909 में मालवीय जी का प्रथम कार्यक्षेत्र, जिसने पत्रकारिता को एक विशिष्ट पहचान दी, सिर्फ़ इतिहास बनकर रह गया। निश्चय ही यह मालवीय जी के पुरुषार्थ-पराक्रम का ही परिणाम था कि भारत में पत्रकारिता की पहचान दिलानेवाला यह पत्र मालवीय जी के पृथक् होने के पश्चात् ही शांत हो गया। यह भी कहा जा सकता है इसका प्रगत स्वरूप मालवीय जी के श्रीयश का ही सुफल था। *हिंदुस्तान* तो कुशल नीति-मार्गदर्शन के अभाव में बंद हो गया, लेकिन मालवीय जी पत्रकारिता के क्षेत्र में सर्वोच्च मुखबिन्दु के रूप में स्थापित हो गये।

मालवीय जी ने *हिंदुस्तान* से अलग होने के पश्चात् स्वयं को पत्रकारिता की दुनिया से बिल्कुल पृथक् नहीं होने दिया। उनके लिए सार्वजनिक जीवन में अख़बारों की उपयोगिता कोई अदृश्यमान वस्तु नहीं थी। *हिंदुस्तान* के पश्चात् मालवीय जी उस समय प्रयाग से प्रकाशित होनेवाले प्रसिद्ध अंग्रेज़ी-दैनिक *इण्डियन ओपीनियन* में सह-संपादक के रूप में कार्य देखने लगे। मालवीय जी के आ जाने से इस पत्र को नित नये आयाम मिले और इसकी शक्ति एवं प्रसिद्धि और भी अधिक

बढ़ गयी।[1] उन दिनों इस पत्र में प्रयाग के लब्धप्रतिष्ठि विद्वान् पं० बलदेवराम दवे भी सहयोग कर रहे थे। उन दोनों के संयुक्त प्रयास से यह पत्र लोकप्रिय हो गया। कालान्तर में इस दैनिक पत्र का लखनऊ से प्रकाशित हो रहे पत्र *एडवोकेट* में विलय हो गया।[2] *इण्डियन ओपीनियन* का *एडवोकेट* में विलय हो जाने के बाद भी मालवीय जी *एडवोकेट* से जुड़े रहे और लेखन सहित अन्य प्रकार का सहयोग देते रहे।[3]

इस प्रकार मालवीय जी ने सार्वजनिक जीवन के साथ-साथ पत्रकार के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित कर लिया। उन्होंने एक निश्चित कार्यप्रणाली से अपनी योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए पत्रकारिता के उच्च मानकों को निर्धारित किया। पत्रकार के रूप में *हिंदुस्तान* से प्रारम्भ हुई मालवीय जी की यह यात्रा जीवनपर्यंत चलती रही। 20वीं शती के प्रारम्भ से ही पत्रकार के रूप में उनके द्वारा प्राप्त उपलब्धियों से उनका तेज प्रखर होता गया और वह दिन-प्रतिदिन पत्रकारिता में नवीन आयामों का सृजन करते रहे।

सन् 1905 के पश्चात् भारत में राष्ट्रीय भावनाओं का एक प्रगत स्वरूप देखने को मिलता है जिसकी परिणति भारतीय स्वाधीनता के लिए निरन्तर चलनेवाले आन्दोलनों के रूप में दिखाई देती है। इसका प्रतिनिधित्व प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मालवीय जी कर रहे थे। ऐसे उत्तेजनात्मक राष्ट्रवादी वातावरण के उत्साहवर्धन के लिए मालवीय जी ने अनेक समाचार पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन व संपादन किया। क्योंकि वह पत्रकारिता को भारत की स्वाधीनता के लिए अपरिहार्य साधन मानते थे और इसके लिए आवश्यक था कि समाज में विचारोत्तेजना सर्वव्यापी हो।

1. *अभ्युदय* (1905)

बीसवीं शती के प्रारम्भिक चरण में मालवीय जी ने पत्रकारिता के साथ-साथ भारतीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा-पद्धति के उत्थान के लिए काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के विचार को मूर्तरूप देना प्रारम्भ किया। उनके अथक परिश्रम एवं प्रयासों से 1905 ई० में उनकी यह योजना काँग्रेस के मंच से स्वीकृत हो चुकी थी। विश्वविद्यालय की भावना को प्रचारित करने के लिए उन्होंने एक हिंदी-साप्ताहिक

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *आधुनिक भारत के निर्माता मदनमोहन मालवीय*, पृ० 23
2. *वही*, पृ० 23
3. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 28-29

प्रकाशित करने की योजना बनायी। सन् 1907 में वसन्त पञ्चमी के दिन मालवीय जी ने पत्रकारिता के इतिहास में प्रयाग से *अभ्युदय* का प्रकाशनकर एक और अध्याय आरम्भ किया। उल्लेखनीय बात यह भी थी कि पत्र का 'अभ्युदय' के रूप में नामकरण पं० बालकृष्ण भट्ट ने किया था जो *हिंदी प्रदीप* के संपादक थे।[1] उस समय कुछ लोगों ने इस नाम की बहुत हँसी उड़ाई थी। लोग इसे मज़ाक में 'अभद्र', 'बेहूदा' कहते थे।[2] उन दिनों उर्दू-फ़ारसी का बोलबाला था, अतः *अभ्युदय* के कार्य को समझ पाना उनके बूते की बात नहीं थी।[3] *अभ्युदय* के प्रकाशन के प्रारम्भिक दो वर्षों तक मालवीय जी ने इसका संपादन किया लेकिन प्रान्तीय काउंसिल के सदस्य हो जाने के कारण *अभ्युदय* का भार पुरुषोत्तदास टण्डन के हाथों में सौंप दिया। उसके बाद सदानन्द जोशी उसके संपादक रहे। सन् 1910 में मालवीय जी के भतीजे (मंझले भाई पं० जयकृष्ण के पुत्र) पं० कृष्णकांत मालवीय ने संपादन का उत्तरदायित्व ग्रहण किया और बहुत वर्षों तक उसके संपादक बने रहे। पं० कृष्णकांत मालवीय के स्थान पर गणेश शंकर विद्यार्थी (1890-1931) और प्रसिद्ध लेखक पं० वेंकटेश नारायण तिवारी को भी संपादकीय दायित्व प्राप्त हुआ था।[4]

अभ्युदय के 'प्रवेशांक' के 'संपादकीय' में मालवीय जी ने लिखा, 'हमारी अभिलाषा मंद नहीं है। पृथ्वीमण्डल पर जितने पर्वत हैं, उनमें सबसे ऊँचा पर्वत नगाधिराज हिमालय है। हमारी अभिलाषा है कि हमारे देश का अभ्युदय भी उतना ही ऊँचा हो।'[5] काशी हिंदू विश्वविद्यालय का प्रचार करने के साथ-साथ तत्कालीन अन्य प्रमुख समस्याओं पर भी उसमें विचार होता रहा। साथ ही इसका उद्देश्य जनता में कांग्रेस-विचारधारा को लोकप्रिय करना एवं लोगों को नवीन प्रेरणा देना भी था।[6]

प्रारम्भ में *अभ्युदय* का प्रकाशन एक साप्ताहिक पत्र के रूप में हुआ था, पर 1915 ई० में वह दैनिक हो गया और फिर कभी अर्द्धसाप्ताहिक, कभी साप्ताहिक होकर निरन्तर प्रकाशित होता रहा।[7] पं० कृष्णकांत मालवीय के पश्चात्

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय का जीवनचरित*, पृ० 44
2. पं० ब्रजमोहन व्यास, पूर्वोद्धृत, पृ० 23
3. मदनलाल पँवार, *मदनमोहन मालवीय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व*, पृ० 31
4. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय का जीवनचरित*, पृ० 44
5. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 28
6. सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 32
7. सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय का जीवनचरित*, पृ० 44

उनके सुपुत्र पद्मकान्त मालवीय जब *अभ्युदय* के सम्पादक हुए और उनके समय अपरिहार्य कारणों से *अभ्युदय* का प्रकाशन स्थगित करना पड़ा। मालवीय जी ने *अभ्युदय* के लिए जो संपादकीय नीति तैयार की थी, उसका मूल तत्त्व था भारत के लिए स्वराज्य। यही कारण था कि *अभ्युदय* की कई प्रतियों के हर पृष्ठ पर यह छपा मिलता है कि 'कृपा कर पढ़ने के बाद *अभ्युदय* किसी किसान भाई को दे दीजिए'।[1]

प्रारम्भ से ही मालवीय जी *अभ्युदय* को स्वराज्यप्राप्ति के साधन के रूप में लेते थे। *अभ्युदय* पर मालवीय जी के विचारों व संस्कारों का पूरा प्रभाव दिखाई देता था। पत्र में न तो विज्ञापन प्रकाशित किए जाते थे और न ही अपराध व बलात्कार के समाचार।[2] मालवीय जी ने *अभ्युदय* में बड़ी निर्भीकता से अपने विचारों को प्रकाशित किया। उनके लेखों में यदि समाजसुधार की बातें मिलती हैं तो शिक्षा के प्रति समर्पण का भाव भी। विदेशी संबंधों व घटनाओं पर गम्भीर बातें पढ़ने को मिलती हैं तो अंग्रेज़ों के दमनात्मक निर्णयों व आदेशों पर तीखी टिप्पणी भी।[3]

अभ्युदय सदा निःस्वार्थ, निर्भीक और नम्र रहा। उसने अपनी मर्यादा को कभी हाथ से नहीं जाने दिया। कर्त्तव्यपालन में उसने कभी लोकप्रियता और अप्रियता का विचार नहीं किया।[4] अमीर और गरीब *अभ्युदय* की दृष्टि में सदा समान रहे। उसने कभी गरीबों पर अमीरों के अत्याचारों को सहन नहीं किया। देशी राज्यों की प्रजा का पक्ष, किसानों की हिमायत तो इसकी मशहूर है ही, इसने एक गरीब उपलोंवाली तक की इज्ज़त की रक्षा के लिए हलचल मचा दी।[5] सहयोगियों और विरोधियों— दोनों के साथ इस समाचार-पत्र का व्यवहार सज्जनतापूर्ण रहा।[6] *अभ्युदय* में प्रकाशित विचारों का भाव स्पष्ट रूप से क्रान्तिकारी होता था। स्पष्टता और निर्भीकता के कारण उसे अनेक बार ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति का सामना करना पड़ा, कई बार भारी अर्थदण्ड भी देना पड़ा। ब्रिटिश सरकार की इस दमन-नीति के चलते महीनों तक *अभ्युदय* का प्रकाशन नहीं हो सका।[7]

1. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 29-29
2. *वही*, पृ० 29
3. *वही*, पृ० 29
4. मुकुट बिहारी लाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 51
5. *वही*, पृ० 51
6. पं० पद्मकान्त मालवीय, *मालवीयजी की जीवन-झलकियाँ*, द्वितीय संस्करण, 1967, प 211
7. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *पं० मदनमोहन मालवीय*, पृ० 44

अभ्युदय ने कई क्रान्तिकारी विशेषांक प्रकाशित किये। मालवीय जी ने *अभ्युदय* के माध्यम से क्रान्तिकारी गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। *अभ्युदय* के क्रान्तिकारी विशेषांकों में 'भगत सिंह अंक' और 'सुभाषचंद्र बोस अंक'-जैसी शृंखला ने क्रान्तिकारियों के राष्ट्रवादी विचारों को समाज में प्रचारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। 08 मई, 1931 को प्रकाशित *अभ्युदय* के 'भगत सिंह अंक' को अंग्रेज़ सरकार ने ज़ब्त कर लिया था। कृष्णकांत मालवीय द्वारा संपादित इस अंक में भगत सिंह के सन्दर्भ में की गई ग़ैरक़ानूनी कार्रवाइयों, फाँसी में बरती गई ज़ल्दबाजी, असेंबली बम काण्ड में भगत सिंह का ऐतिहासिक बयान-जैसे कई दस्तावेज प्रकाशित किए गये जो अंग्रेज़ सरकार की जड़ों को हिला देने के लिए काफ़ी थे।[1] *अभ्युदय* को इसके लिए कई कठिनाइयों से जूझना पड़ा। संपादक कृष्णकांत मालवीय को इन राष्ट्रवादी समाचारों के प्रकाशन के कारण जेल भी जाना पड़ा। *अभ्युदय* के क्रान्तिकारी विचारों के कारण इसे बंद करने के लिए सरकार का आदेश हुआ। तीन हज़ार रुपयों की ज़मानत माँगी गयी। पुराने संपादक के त्यागपत्र देने पर मालवीय जी ने तत्काल एक नये संपादक की नियुक्ति की और महीनों तक स्वयं इसके अग्रलेखों का अंग्रेज़ी-अनुवाद करके प्रान्तीय सरकार को बराबर भेजते रहे। महीनों बाद फ़ैसला हुआ, *अभ्युदय* पुनर्जीवित हो उठा।[2] *अभ्युदय* ने अपने जीवनकाल में कई पत्रकारीय कीर्तिमान व प्रतिमान स्थापित किए, जिनमें मालवीय जी की छाप स्पष्ट रूप से दिखती रही।[3]

अभ्युदय मालवीय जी के विचारों का मुखपत्र था। उन्होंने इस पत्र के माध्यम से अपने चिन्तन के क्षेत्र को जनसामान्य की समस्याओं के साथ संबंधित करते हुए उसे राष्ट्र-जागरण का अभिनव प्रयास किया। वस्तुतः इस पत्र की नीति उसके नाम में छिपी हुई है। उसकी नीति अभ्युदय की थी और इसका मूलोद्देश्य राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, चाहे वह सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक हो या राजनीतिक– सभी क्षेत्रों में लोकोभ्युदय करना था। मालवीय जी के प्रयासों से *अभ्युदय* अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में पूर्णरूपेण सफल हुआ। इस पत्र की लोकप्रियता बढ़ती गयी। *अभ्युदय* जनसामान्य में राष्ट्रीय विचारधारा का जागरण करने वाला सन्देशवाहक बन गया। एक ओर जनता में इसकी लोकप्रियता बढ़ रही

1. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 29
2. उमेशदत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 61
3. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 29

थी तो दूसरी ओर यह ब्रिटिश सरकार की आँखों की किरकिरी बनता गया। वस्तुतः *अभ्युदय* की लोकप्रियता मालवीयजी की संपादकीय नीति का ही सुफल थी।

2. *द लीडर* (1909)

सन् 1905 के बंगाल-विभाजन के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध में उग्र आन्दोलन प्रारम्भ हुए। लॉर्ड कर्जन की दुःसाहसी विखण्डन नीति के चलते बंगाल को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। बंग-भंग की इस राष्ट्रविरोधी नीति ने समूचे भारत को उद्वेलित कर दिया। बंगाल-विभाजन के विरोध में वातावरण निर्मित करने व ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लोकजागरण में समाचार-पत्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। अंग्रेजों ने प्रेस की स्वतंत्रता को कुचलने के लिए 'प्रेस एक्ट' और 'न्यूज़पेपर एक्ट'-जैसे क़ानून को बनाने का मन बना लिया था।

इस विधान का विरोध करने और पत्रकारिता के क्षेत्र को संगठन के रूप में आबद्ध करने की दृष्टि से मालवीय जी ने 01 अप्रैल, 1908 को 'अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन' आयोजित किया था। इस सम्मेलन के पश्चात् ही मालवीय जी को लगने लगा था कि अंग्रेज़ों से संघर्ष करने के लिए जनता की आवाज़ को उन्हीं की भाषा में उन तक पहुँचाना होगा।[1] मालवीय जी का मानना था कि पत्रकारिता के समुन्नत विकास से ही हम अंग्रेज़ों से मानसिक संघर्ष कर सकते हैं और इसमें भाषा का समृद्ध ज्ञान व प्रयोग एक अचूक हथियार हो सकता है। मालवीय जी ने यह निश्चित किया कि भारतीय स्वाधीनता की जो लड़ाई *अभ्युदय* के माध्यम से लड़ी जा रही है, उसको बल देने के लिए अंग्रेज़ी में एक पत्र निकाला जाये। मालवीय जी के प्रयासों से 24 अक्टूबर, 1909 ई० को विजयदशमी के दिन *द लीडर* का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।[2] *द लीडर* के साथ अपने संबंधों के विषय में मालवीय जी ने कहा[3], "*द लीडर* के स्थापित होने से पूर्व एक दैनिक समाचार-पत्र की इलाहाबाद में बड़ी आवश्यकता जान पड़ती थी। सन् 1879 ई० में पं० अयोध्यानाथ जी ने *इण्डियन हेराल्ड* निकाला था और उस पर बड़ा धन व्यय किया। वह पत्र तीन वर्ष तक चला

1. उमेशदत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 60
2. सीताराम चतुर्वेदी, *पं० मदनमोहन मालवीय*, पृ० 45
3. *वही*, पृ० 45; सुनीता व्यास, मदनमोहन मालवीय, तथा पं० ब्रजमोहन व्यास, पूर्वोद्धृत, पृ० 105; सोरन सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 33

और दुर्भाग्यवश उसके बाद बंद हो गया। *द लीडर* के स्थापित होने का एक कारण यह भी था। मैंने वक़ालत छोड़ने का निश्चय कर लिया था और उस समय मेरा यह विचार था कि सार्वजनिक कार्यों से भी अलग हो जाऊँ जिससे हिंदू विश्वविद्यालय का कार्य ठीक प्रकार से कर सकूँ। उस समय मेरे मन में आया कि यदि मैं सार्वजनिक जीवन से बिना एक पक्ष स्थापित किये अलग होता हूँ तब मैं अपने प्रान्त के प्रति अपने धर्म को नहीं निभाता हूँ। मुझे उसकी आवश्यकता इतनी अधिक और अनिवार्य जान पड़ी कि मैंने विचार किया कि सार्वजनिक जीवन से अलग होने से पूर्व एक पत्र यहाँ अवश्य स्थापित होना चाहिये। मैंने इसका कुछ मित्रों से उल्लेख किया और उन्होंने प्रसन्नता से उसके लिए धन दे दिया। आरम्भ में इसके लिए 34 हजार रुपये एकत्र हुए। इतना रुपया एक दैनिक पत्र चलाने के लिए बहुत कम था। लेकिन मुझे अपने मित्रों पर विश्वास था। *द लीडर* ने निःस्वार्थ भाव से देश की और प्रान्त की सेवा की है। नीति और विचारों में सदा मतभेद है और रहेगा, लेकिन उसके कारण कोई उसकी सेवा में सन्देह नहीं ला सकता। शायद ही ऐसा कोई पत्र हो जो अपने मित्रों के विचारों को सारे प्रश्नों पर प्रकट कर सके। श्री चिन्तामणि और पं० कृष्णराम *द लीडर* की जान हैं। *द लीडर* के बढ़ते हुए प्रभाव को और उसकी सेवाओं को सारे प्रान्तों ने स्वीकार किया है। सरकारी अधिकारियों ने भी यह बात स्वीकार की है कि *द लीडर* सार्वजनिक प्रश्नों का न्यायोचित दृष्टि से विचार करता है।

श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त और श्री सी०वाई० चिन्तामणि (1880-1941) *द लीडर* के संपादक-मण्डल में नियुक्त हुए। चिन्तामणि की *द लीडर* के सफलतापूर्ण संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उन दिनों इनके सन्दर्भ में यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी थी कि 'लीडर चिन्तामणि है और चिन्तामणि ही लीडर', 'श्री चिन्तामणि का प्राण लीडर है और लीडर के प्राण श्री चिन्तामणि'।[1] *द लीडर* के प्रकाशन पर कुछ लोगों ने भविष्यवाणी की थी[2]— यह बेवक्त की शहनाई कोई नहीं सुनेगा। पत्र शीघ्र ही बंद हो जायेगा। कुछ लोगों का कहना था कि इसके संपादक और अधिक शीघ्र ही विपदा में फँसेंगे। प्रयाग के आयुक्त और *द पायोनियर* का कहना था कि *द लीडर* इतना नेक और भला है कि अधिक दिनों तक नहीं रहेगा।

यद्यपि इस समाचार-पत्र को समयानुरूप आर्थिक झंझावातों का सामना

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय*, प्रथम खण्ड, पूर्वोक्त, पृ० 45
2. *वही*, पृ० 45

करना पड़ा। लेकिन यह मालवीय जी के साहस का ही पराक्रम था कि *द लीडर* हमेशा बंद होने की जगह दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति करता गया। सन् 1926 ई० में उसकी अपनी नयी इमारत बनी और सन् 1929 ई० में उसके लिए नयी मशीनें विदेश से मंगाई गयीं और इस प्रकार *द लीडर* एक स्थापित समाचार-पत्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। इसी प्रेस से एक हिंदी-साप्ताहिक *भारत* भी प्रकाशित होने लगा।[1]

यहाँ मालवीय जी के संबंध में यह भी उल्लेख करना समीचीन होगा कि 24 अक्टूबर, 1909 को जब उन्होंने *द लीडर* का प्रकाशन प्रारम्भ किया, तब 'न्यूज़ पेपर्स लिमिटेड' नामक कम्पनी बनाई गयी। इस कम्पनी में मालवीय जी के अतिरिक्त पं० मोतीलाल नेहरू (प्रथम अध्यक्ष), तेज बहादुर सप्रू (1875-1949), सच्चिदानन्द सिन्हा (1871-1950)-जैसे व्यक्ति सम्मिलित थे।[2] मालवीय जी 10 वर्षों तक इसके चेयरमैन रहे।[3]

एक समाचार-पत्र के रूप में *द लीडर* की सफलता का प्रमाण यह है कि सन् 1927 ई० में समाचार-पत्रों की गोपनीय रिपोर्ट में जो कुछ लिखा गया, वह इस समाचार-पत्र की उपादेयता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। रिपोर्ट में कहा गया[4]— 'संयुक्त प्रान्त के पढ़े-लिखे भारतीयों को राजनीतिक मामलों की ख़बरें *द लीडर* से मिला करती हैं और इसी आधार पर वे अपनी सम्मति निश्चित करते हैं। प्रांतीय काउंसिल में मि० चिन्तामणि ने जो नेशनलिस्ट पार्टी कायम की है, उसके संगठन में *द लीडर* से भारी मदद मिली है। यह पत्र प्रान्तीय सरकार के विरुद्ध निरन्तर प्रचार करता रहता है और सरकार के पास कोई साधन नहीं है, जिससे वह इस पक्ष के आलेखों का ज़वाब दे सके।' *द लीडर* को भी सरकारी यातना का शिकार होना पड़ा, किन्तु मालवीय जी के प्रयासों से इस समाचार-पत्र पर कोई कठोर कार्रवाई नहीं हुई।

द लीडर की नीति सदा एक-सी नहीं रही। इसने समय पड़ने पर शायद ही कोई सार्वजनिक नेता छोड़ा हो। पं० मदनमोहन मालवीय से लगाकर पं० मोतीलाल

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय*, नवीन संस्करण, 2002, पृ० 46
2. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 38
3. सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय*, पृ० 46
4. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 38

नेहरू, श्री गोखले और यहाँ तक कि महात्मा गाँधी भी इसकी आलोचना से नहीं बच पाये।[1]

अन्ततः यह कहना न्यायोचित होगा कि *द लीडर* पं० मदनमोहन मालवीय जी की भावनात्मक अभिव्यक्ति थी। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि आर्थिक संकट के दिनों में *द लीडर* जब बंद होने की स्थिति में था, तो मालवीय जी ने उसके रक्षार्थ अपनी धर्मपत्नी से सर्वप्रथम यह कहकर दान लिया था कि "तुम्हारा पाँचवाँ पुत्र मृत्युशैय्या पर पड़ा है।" निश्चय ही मालवीय जी ने *द लीडर* को पुत्रवत् प्रेम किया। आज यही बात समाज के कुछ व्यक्तियों को अज़ीब या हास्यास्पद लगे। निर्जीव जीवन से कैसा मोह और वह भी पुत्रवत् ! अस्तु, यह मालवीय जी की वृत्ति एवं प्रवृत्ति का परिणाम था और उनकी इस उदारता में हिंदुत्व के दार्शनिक चिन्तन का बोध होता है। सी०वाई० चिन्तामणि की मृत्यु के बाद घनश्यामदास बिडला (1894-1983) ने *द लीडर* को खरीद लिया और उसका संचालन अपनी नीति के अनुसार करने लगे।[2] लेकिन वह इसके अवसान को नहीं रोक सके। मालवीय जी ने इतनी आत्मीयता और दुलार के साथ इसको प्रकाशित किया कि वह स्वाधीन भारत में अपने तेवर बरकरार न रख सका और बंद हो गया, लेकिन आज भी प्रयाग में जहाँ पर प्रेस स्थित था, उस मार्ग का नाम 'लीडर रोड' है।

3. *मर्यादा* (1910)

पं० मदनमोहन मालवीय ने साहित्य व संस्कृति-संबंधी चिन्तन को प्रकाशित करने की दृष्टि से *द लीडर* की स्थापना के एक वर्ष पश्चात् *मर्यादा* नामक पत्रिका निकालने में सहयोग किया। मालवीय जी को प्रतीत हुआ कि समाचार-पत्र के संपादन के माध्यम से वह सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की दृष्टि से जनसामान्य को अवगत नहीं करा पा रहे हैं। अंग्रेजी पढ़ी-लिखी जनता के लिए तो *द लीडर* पर्याप्त था, पर केवल हिंदी समझनेवालों को भी बौद्धिक आहार मिलना चाहिए।[3] पं० बालकृष्ण भट्ट ने इस पत्रिका का नामकरण किया था और उसके मुखपृष्ठ पर निम्नलिखित श्लोक छपता रहा[4] —

1. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय*, पृ० 46
2. वेंकटेश नारायण तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 38
3. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय*, पूर्वोक्त, ৳ 47
4. पं० ब्रजमोहन व्यास, पूर्वोद्धृत, पृ० 102

'नीर क्षीर विवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विस्वेऽस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥'

—पण्डितराज जगन्नाथ

अर्थात्, 'हे हंस ! यदि जल और दुग्ध का अंतर समझने में तुम्हीं प्रमाद करोगे तो फिर कौन तुम्हारे इस वंश-पराम्परागत अधिकार का पालन करेगा?'

मालवीय जी की अनुमति से *मर्यादा* 'अभ्युदय' प्रेस से ही प्रकाशित होने लगी। पत्रिका का प्रवेशांक निकला तो मालवीय जी ने कृष्णकान्त मालवीय से ईषत् हास्य से कहा, "कृष्णा ! अभ्युदय प्रेस से मर्यादा निकल गयी।"[1] कृष्णकांत मालवीय ने उत्तर दिया, "हाँ, पर वह स्थायी होगी और वह देश और समाज के हित में होगी।"

दस वर्ष तक कृष्णकांत ने उसका भी संपादन किया। 'धाय' पर तीन बच्चों को दूध पिलाने का भार पड़ गया।[2] अतः काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त (1883-1944) ने दसवर्षीय *मर्यादा* को गोद ले लिया। *मर्यादा* के प्रकाशन के आरम्भ में मदनमोहन मालवीय जी की हँसी में कही हुई बात "मर्यादा अभ्युदय प्रेस से निकल गयी"— एक दूसरे अर्थ में चरितार्थ हो गयी। *मर्यादा* में बहुत दिनों तक भारत की वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक साहित्यिक समस्याओं पर योग्यतापूर्ण निबन्ध व आलेखों का प्रकाशन होता रहा।

4. *किसान* (1921)

मालवीय ने किसानों को अपने हितों के प्रति जागरूक करने और उनकी दशा को सुधारने की दृष्टि से एक सभा की स्थापना की थी। इस सभा की गतिविधियों और उसके प्रचार के लिए एक मुखपत्र की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। सन् 1921 में उन्होंने अभ्युदय प्रेस से साप्ताहिक *किसान* निकाला और कृष्णकांत मालवीय को उसका संपादक बनाया।[3] यद्यपि यह 3-4 वर्षों के पश्चात् बंद हो गया।[4]

1. पं० ब्रजमोहन व्यास, पूर्वोद्धृत, पृ० 102
2. *वही*, पृ० 102
3. *वही*, पृ० 102
4. उमेश दत्त तिवारी, पूर्वोद्धृत, पृ० 62

5. *हिंदुस्तान टाइम्स* (1924)

पं० मदनमोहन मालवीय पत्रकारिता के द्वारा भारत में वैचारिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति लाना चाहते थे। इसके निमित्त वह सतत रूप से पत्र-पत्रिकाओं के संपादन व प्रकाशन में लगे रहे। नित नये समाचार-पत्र व पत्रिकाओं का प्रकाशन, पत्रिकारिता के प्रति उनके प्रेम और रुचि को प्रदर्शित करता है। इसी श्रृंखला में मालवीय जी ने सिखों द्वारा दिल्ली से प्रकाशित होते अंग्रेज़ी-पत्र *हिंदुस्तान टाइम्स* को लेने की योजना बना डाली। *हिंदुस्तान टाइम्स* एक राष्ट्रीय पत्र था, लेकिन उसकी व्यवस्था ठीक न होने के कारण वह अपेक्षित प्रगति नहीं कर पा रहा था। सन् 1923 में *मर्यादा* के बंद होने के दो वर्षों के पश्चात् मालवीय जी ने 10 हज़ार रुपये देकर *हिंदुस्तान टाइम्स* को खरीद लिया। उस समय मालवीय जी इस पत्र के सर्वेसर्वा थे और उसकी प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष भी थे।[1] पोथान जोसेफ (1892-1972) उसके संपादक थे और उन्होंने बड़ी योग्यता से अपने कर्त्तव्य का निर्वहन किया।[2] मालवीय जी ने *हिंदुस्तान टाइम्स* की सफलता के पश्चात् 12 अप्रैल, 1936 को इसी प्रेस से *हिंदुस्तान* नामक हिंदी-दैनिक का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया।[3] इसके पहले संपादक सत्यदेव विद्यालंकार (1904-2003) थे। प्रबन्ध-संपादक देवदास गाँधी (1900-1957) और प्रकाशक देवी प्रसाद शर्मा को बनाया गया।[4] *हिंदुस्तान* ने अपने प्रवेशांक में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि वह पं० मदनमोहन मालवीय के बताये मार्ग पर आगे बढ़ेगा। प्रवेशांक के 'संपादकीय' में लिखा गया—[5]

> 'किसी ख़ास व्यक्ति, जाति, सम्प्रदाय, समूह या दल के लिए *हिंदुस्तान* जन्म नहीं ले रहा है। जिस संस्था की ओर से यह निकाला जा रहा है, उसकी स्थापना पूज्य मालवीय जी ने सार्वजनिक हित की भावना से की थी। पत्रकार के सिर सदा क़ानून की तलवार लटकती रहती है। सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में उसे जीवन की लड़ाई लड़नी पड़ती है। लेकिन हमें उज्ज्वल भविष्य की एक स्पष्ट रेखा चमकती दिखाई पड़ती है। *हिंदुस्तान* ऊँचे और काल्पनिक संसार में न उड़कर मनुष्य जीवन के इस लोक में ही रहना चाहता है। पत्रकार को सबसे बड़ा सहारा है जनता की सहानुभूति का।'

1. सीताराम चतुर्वेदी, *महामना पं० मदनमोहन मालवीय*, पृ० 47
2. *वही*, पृ० 47
3. *वही*, पृ० 47
4. धनंजय चोपड़ा, पूर्वोद्धृत, पृ० 41
5. *वही*, पृ० 41-42

अंग्रेजी-दैनिक *हिंदुस्तान टाइम्स*, जो मालवीय जी की प्रेरणा से निकला आज भी भारत का गौरवशाली दैनिक है।

6. *सनातन धर्म* (1933)

मालवीय जी ने पत्रकारिता के आदर्श को वैविध्य के साथ पारिभाषित करने की चेष्टा की। इसलिए पत्रकारिता के द्वारा समाज-जीवन के सभी क्षेत्रों के सन्दर्भ में लेखन उनकी पत्रकारिता का वैशिष्ट्य है। मालवीय जी ने हिंदू-धर्म की शोचनीय दशा को ध्यान में रखकर उसके नवोत्थान के लिए 20 जुलाई, 1933 को गुरु पूर्णिमा के पवित्र दिन हिंदी-साप्ताहिक *सनातन धर्म* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। वास्तव में इस पत्र का जन्म हिंदुओं के प्रति मालवीय जी के अंतर्मन में व्याप्त पीड़ा का परिणाम था। मालवीय जी ने इस पत्र के प्रकाशन के औचित्य को इसके प्रथम 'संपादकीय' में स्पष्ट किया। यहाँ सारगर्भित रूप में इतना कहना ही युक्तिसंगत होगा कि यह पत्र मालवीय जी की हिंदुओं के प्रति भावनात्मक अभिव्यक्ति थी। मालवीय जी भारत के पुनर्निर्माण के लिए हिंदुओं को संगठित व शक्तिसम्पन्न होता देखना चाहते थे। वह इस बात से भली-भाँति अवगत थे कि हिंदू समाज के पुनरुत्थान के बिना यदि स्वाधीनता प्राप्त हो गई तो वह पराधीनता के नारकीय जीवन से भी भयावह होगी। वस्तुतः मालवीय जी हिंदुत्व को ही राष्ट्रीयता का आधार-स्तम्भ मानते थे। तत्कालीन समय में हिंदुओं पर हो रही हिंसात्मक कार्रवाइयों व राजनैतिक तुष्टिकरण की नीति के चलते उन्होंने अपना सम्पूर्ण ध्यान हिंदू समाज के उत्थान में लगाया।

इसके अतिरिक्त मालवीय जी के संरक्षण में दिल्ली से एक अन्य साप्ताहिक *गोपाल* का प्रकाशन किया गया। इसके संपादक फतहचंद शर्मा आराधक थे। पत्र के संपादन तथा अर्थिक नियोजनों में मालवीय जी का सतत परामर्श श्री शर्मा को उपलब्ध था।[1]

उपसंहार

अन्ततः यह कहना ही विषयानुरूप होगा कि पं० मदनमोहन मालवीय ने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र-सेवा के लिए समर्पित कर दिया। आधुनिक भारत के इतिहास में ऐसे राष्ट्रभक्तों के उदाहरण बिरले ही प्राप्त होते हैं जिन्होंने समाज-जागरण को

1. ईश्वरप्रसाद वर्मा, *मालवीय जी के सपनों का भारत*, सन् 1967, पृ० 89

भारतीय स्वाधीनता का माध्यम बनाया। सार्वजनिक जीवन का ऐसा शायद ही कोई क्षेत्र शेष रहा है जिसे मालवीय जी ने अपने राष्ट्रीय चिन्तन से न सींचा हो। चाहे वह राष्ट्रभाषा हिंदी का विषय हो या, स्वदेशी, गोसेवा, शिक्षा, पत्रकारिता, हिंदू-पुनरुत्थान, धार्मिक चिन्तन, सामाजिक सुधार, और इससे कहीं बढ़कर भारत की स्वाधीनता का विषय हो– सभी में मालवीय जी ने तत्कालीन भारत के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया। मालवीय जी इस तथ्य से भली-भाँति अवगत थे कि समाज-जीवन के इन विभिन्न अंगों के पुनरुत्थान व विकास के अभाव में स्वाधीनता प्राप्त नहीं की जा सकती। यदि भारत स्वाधीन हो भी जाता है तो वास्तविक निहितार्थ में यह स्वाधीनता भारतीय मूल्यों पर आधारित नहीं होगी। इसलिए मालवीय जी ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उन्नयन के लिए समाज-जीवन के इन विविध अंगों के माध्यम से समाज को संगठित व जागृत किया। इसके लिए उन्होंने पत्रकारिता को साधन बनाते हुए सांस्कृतिक राष्ट्ररूपी साध्य को प्राप्त करने का सराहनीय प्रयत्न किया।

यद्यपि पं० मदनमोहन मालवीय ने एक साधारण शिक्षक के रूप में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया था, तथापि अपनी आसाधारण प्रतिभा और योग्यता के बल पर उन्होंने सार्वजनिक जीवन की उन ऊँचाइयों को स्पर्श किया जो एक साधारण मनुष्य के लिए असम्भव है। ऐसी ही ऊँचाइयों में उनका पत्रकारिता में योगदान भी था। उन्होंने पत्रकारिता के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। उन्हें 'आधुनिक भारत में पत्रकारिता के जनक' कहा जा सकता है। उन्होंने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से समाज में एक वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात किया और इससे कहीं बढ़कर भारतीय समाज की मरणासन्न आत्मा को जागृतकर भारत की स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया। यही नहीं, मालवीय जी न केवल एक कुशल संपादक थे, वरन् उनकी भाषागत ज्ञान लेखनी भी समृद्ध थी। उन्होंने पत्रकारिता को एक नवीन आयाम प्रदान किया। उन्होंने पत्रकारों के संगठनात्मक स्वरूप को प्रतिपादित कर भारतीय प्रेस की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अनवरत संघर्ष किया। उन्होंने पत्रकारिता के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, भाषा का लोक जागरण किया। निश्चय ही भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी की अभूतपूर्व देन है। भारतीय पत्रकारिता, पत्रकारिता के इस नायक के प्रति सदैव ऋणी रहेगी।

आप सभी को बहुत-बहुत धन्यवाद !

आधार-ग्रन्थ-सूची

हिंदी आधार-ग्रन्थ :

आधुनिक भारत के निर्माता मदनमोहन मालवीय, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, द्वितीय संस्करण, 1980

तीस दिन मालवीय के साथ, रामनरेश त्रिपाठी

पत्रकारिता के युगनिर्माता मदनमोहन मालवीय, धनंजय चोपड़ा, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010

पं० मदन मोहन मालवीय का जीवनचरित, रामगोविन्द मिश्र

भारतभूषण महामना पं० मदनमोहन मालवीय : जीवन एवं व्यक्तित्व, उमेश दत्त तिवारी, प्रथम संस्करण, 1988

भारतीय पुनर्जागरण और मदनमोहन मालवीय, डॉ० कृष्ण दत्त द्विवेदी, प्रथम संस्करण, 1891

भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, ए०आर० देसाई, द्वितीय संस्करण, 1982

मदनमोहन मालवीय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, मदनलाल पँवार

मदनमोहन मालवीय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सोरन सिंह, प्रथम संस्करण, दिल्ली, 1989

महामना पं० मदनमोहन मालवीय, प्रथम खण्ड, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, काशी, संवत् 1993

महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, मुकुट बिहारी लाल, प्रथम संस्करण, बनारस, 1977

महामना पं० मदनमोहन मालवीय का जीवन चरित, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, 2009

महामना पं० मदनमोहन मालवीय की जीवनी, वेंकटेश नारायण तिवारी, प्रथम खण्ड, 1962
मालवीयजी की जीवन-झलकियाँ, पं० पद्मकांत मालवीय, द्वितीय संस्करण, 1967
मालवीय जी के लेख, पद्मकांत मालवीय (सं०), 1962
मालवीय जी के सपनों का भारत, ईश्वरप्रसाद वर्मा, प्रथम संस्करण, 1967
सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय जीवन, द्वितीय खण्ड, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी
हिंदी-पत्रकारिता, डॉ० कृष्ण बिहारी मिश्र, प्रथम संस्करण, 1868

अंग्रेज़ी आधार-ग्रन्थ :
ब्रिटिश पेरामाउन्सी एण्ड इण्डियन रिनाशा, पार्ट टू, आर०सी० मजूमदार एण्ड डी०के० घोष, प्रथम संस्करण, 1865
द न्यूज पेपर इन इण्डिया, हेमेन्द्र प्रसाद घोष
रिपोर्ट ऑन द एन, डब्ल्यू प्रॉविसन्स एण्ड अवध फॉर द इयर एण्डिंग, 31-3, 1889, इलाहाबाद, 1890
द नेहरू, वी०आर० नन्दा, लन्दन, 1962
प्रोसीडिंग, गवर्नर जनरल की काउंसिल, 1910, जिल्द 48ए

समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ :
अभ्युदय, 05 मई, 1907
कादम्बिनी, फरवरी 1987
काशी विश्वविद्यालय पत्रिका, 'प्रज्ञा हीरक जयन्ती विशेषांक', भाग 1-2, अंक 21-23, सन् 1976-77
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 'मालवीय जन्मशताब्दी विशेषांक', वर्ष 65, अंक 2-4, संवत् 2018
सनातन धर्म, वर्ष 1, अंक 5
सम्मेलन पत्रिका, 'श्रद्धाञ्जलि-विशेषांक', चैत्र-मार्गशीर्ष, शक 1884, भाग 48, संख्या 2-4
सरस्वती, जुलाई, 1961
हिंदी प्रदीप, मार्च 1880, 18 अक्टूबर, 1884, अक्टूबर-दिसम्बर 1887